# मरु बागवाणी

## okf"kd jktHkk"kk if=dk

## uoe vad

## 2014&15

Hkkd`vuqi&dsUnzh; 'kq"d ckxokuh laLFkku
chNoky] chdkusj&334 006 ¼jktLFkku½

uoe vad

o"kZ 2014

izdk'kd

Mk- lrh'k dqekj 'kekZ
निदेशक
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राज.)
दूरभाष – 0151–2250147, 2250960
फैक्स – 0151–2250145
ई–मेल – ciah@nic.in
वेब साइट – ciah.ernet.in

lEiknd e.My
डॉ. आर.एस. सिंह
डॉ. बी.डी. शर्मा
श्री प्रेम प्रकाश पारीक

ifjdYiuk
श्री संजय पाटिल

nkokR;kx@dkihjkbV
सर्वाधिकार सुरक्षित है। निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक का कोई भी भाग किसी भी प्रकार में, मुद्रण, सूक्ष्म फिल्म अथवा अन्य किसी माध्यम में प्रतिकृति नहीं किया जा सकेगा।

eqnzd

युगान्तर प्रकाशन (प्रा.) लि., डब्ल्यू एच–23, मायापुरी,
नई दिल्ली–110064
दूरभाष – 011–28115949, 28116018

पत्रिका में प्रकाशित लेख में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।

# vuØef.kdk


| Ø- la- | fo"k; | i"B la- |
|---|---|---|
| 1. | संदेश | iii-vii |
| 2. | बागवानी में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक का योगदान | 1 |
| 3. | मरुधरा में खजूर की खेती | 7 |
| 4. | शुष्क क्षेत्रीय सब्जी फसल उत्पादन की उन्नत व्यवस्थाएं | 12 |
| 5. | शुष्क क्षेत्र में फल आधारित खेती: एक समगतिशील परिकल्पना | 19 |
| 6. | बारानी क्षेत्रों में – बेल की बागवानी | 21 |
| 7. | 'गोमा प्रतीक' पश्चिमी भारत के लिए इमली की उन्नत किस्म | 24 |
| 8. | अर्धशुष्क क्षेत्र में जामुन लगाकर लाभ अर्जित करें | 27 |
| 9. | नर्सरी में सब्जियों की पौध तैयार करना | 29 |
| 10. | फल वृक्षों की दैहिक विकृतियॉं एवं उनका निदान | 31 |
| 11. | केर – मरुस्थलीय क्षेत्र में एक बहुपयोगी फलदार झाड़ी | 34 |
| 12. | मरुक्षेत्र में नीबू आधारित कृषि–बागवानी पद्धति में फसलों का विविधिकरण | 37 |
| 13. | मृदा गुणवत्ता प्रबन्धन : टिकाऊ खेती के लिए आवश्यक | 39 |
| 14. | खजूर में लगने वाले मुख्य कीट एवं समेकित प्रबन्धन | 41 |
| 15. | मरु क्षेत्र में खेजड़ी उत्पादन की प्रमुख समस्याएं एवं उनका समाधान | 44 |
| 16. | शुष्क क्षेत्र में पादप विविधता का महत्त्व व संरक्षण | 48 |
| 17. | किशोर अवस्था (जुवेनाइल) डायबिटिज रोगियों हेतु ''पोषक डायबिटिक आटे का विकास'' | 50 |
| 18. | वर्मी कम्पोस्ट | 53 |
| 19. | शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों में सुक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व | 55 |
| 20. | प्रशासनिक भाषा का सरलीकरण | 57 |
| 21. | भाषा बहता नीर– राजभाषा हिंदी के संदर्भ में | 59 |
| 22. | इस माटी का अभिनंदन है | 62 |
| 23. | जामुन | 62 |
| 24. | राजभाषा गतिविधियां | 63 |

Mk- ,l- v¸;Iiu
Dr. S. Ayyappan

lfpo] Ñf"k vuqla/kku ,oa f'k{kk foHkkx ,oa
egkfuns'kd] Hkkjrh; d`f"k vuqla/kku ifj"kn
Ñf"k e=ky;] ubZ fnYyh&110 001
GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH
AND EDUCATION & INDIAN COUNCIL OF
AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, NEW DELHI-110 001

# lans'k

मुझे यह जानकर अपार हर्ष की अनुभूति हुई है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर के द्वारा राजभाषा हिन्दी की संस्थान स्तर पर प्रगति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' के नवम् अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। सरल हिंदी में अनुसंधान से संबंधित ज्ञानवर्धक जानकारी सुविज्ञ पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

पत्रिका की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

¼,l- v¸;Iiu½

MkW- ,u- d- d".k dqekj
Dr. N.K. Krishna Kumar

mi egkfuns'kd ¼ckxokuh foKku½
Hkkjrh; Ñf"k vuqla/kku ifj"kn
Ñf"k vuqla/kku Hkou&II] iwlk
ubZ fnYyh&110 012
Deputy Director General (Horticulture Sciences)
Indian Council for Agricultural Research
Krishi Anusandhan Bhawan-II PUSA
New Delhi-110 012

# lans'k

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान द्वारा राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' के नवम् अंक का प्रकाशन अत्यंत प्रशंसनीय है। शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बागवानी फसलों पर विकसित उपयोगी तकनीकों को राजभाषा में किसानों तक पहुँचाने के लिए यह पत्रिका महत्वपूर्ण माध्यम है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों की भाषा सरल एवं सुपाठ्य है। मेरा विश्वास है कि गर्म–शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों के किसानों में यह पत्रिका बागवानी के प्रति अभिरूचि उत्पन्न करने में सफल होगी ।

नवम् अंक में किए सुधार रुचिकर होंगे, इसी आशा के साथ मैं संस्थान को इस अंक के प्रकाशन के लिए बधाई देता हूँ।

एन. के. कृष्ण कुमार

¼,u- d- d".k dqekj½

lhek pksiMk
Seema Chopra

mi funs'kd ¼jktHkk"kk½
Hkkjrh; Ñf"k vuqla/kku ifj"kn
Ñf"k Hkou
ubZ fnYyh&110 011
Deputy Director (Official Language)
Indian Council for Agricultural Research
Krishi Bhawan
New Delhi-110 011

# lans'k

हिन्दी एक समृद्ध भाषा है और इसकी सम्प्रेषणीयता भी उच्च कोटि की है। इसे प्रचारित–प्रसारित कर प्रगति के पथ पर पहुँचाना हम सभी का दायित्व है। मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' के नवम् अंक का प्रकाशन कर रहा है। राजभाषा हिंदी में कृषि साहित्य उपलब्ध करवाने में परिषद् के संस्थानों का सराहनीय योगदान है। इस तरह के प्रकाशनों के माध्यम से ही कृषि संबंधी विविध जानकारी को पाठकों तक पहुँचाना संभव है। इन पत्रिकाओं से न केवल पाठकों एवं किसानों को उपयागी सामग्री मिलती है, बल्कि संस्थान में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपनी रचनाओं, वैज्ञानिक आलेखों एवं साहित्यिक अभिरूचियों को व्यक्त करने का सुअवसर भी प्राप्त होता है। मुझे आशा है कि 'मरु बागवाणी' का यह अंक पाठकों को नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराएगा।

मैं पत्रिका के सफल एवं सतत प्रकाशन की कामना करती हूँ।

¼lhek pksiMk½

Mk- lrh'k dqekj 'kekZ
funs'kd
Dr. Satish Kumar Sharma
Director

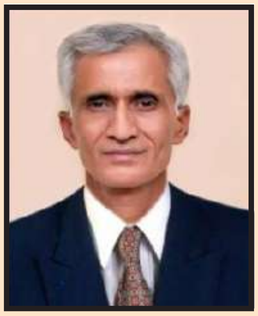

Hkkd`vuq i&dsUnzh; 'kq"d ckxokuh lLFkku
chNoky] chdkusj&334 006 ¼jktLFkku½
ICAR-Central Institute for Arid Horticulture
Bikaner-334 006 (Rajasthan)
Phone: 0151-2250147, Fax: 0151-2250145
E-mail: ciah@nic.in

# lans'k

इस संस्थान द्वारा विगत दस वर्षों से राजभाषा हिन्दी में ''मरु बागवाणी'' के नाम से एक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। शुष्क बागवानी फसलों के प्रचार–प्रसार में यह पत्रिका लोकप्रिय होती जा रही है। हिन्दी अपनी भाषा है और इसका विकास तभी संभव होगा जब हम इसमें लिखेंगे और बोलेंगे। राजभाषा का प्रयोग एक संवैधानिक दायित्व है जिसका पालन करना हमारा कर्तव्य है। हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास किए जाते हैं उनमें हिन्दी पत्रिका प्रकाशन का भी अपना एक महत्व होता है। मरु बागवाणी पत्रिका न केवल अपने पाठक वर्ग में सराही जाती है, वरन् भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने भी इसकी गुणवत्ता को श्रेष्ठ माना है। यह उत्साहवर्धक पहलु है जो इस पत्रिका को अधिक आकर्षक, रोचक, लोकप्रिय बनाने को प्रेरित करता है।

पत्रिका के लेखों की गुणवत्ता और उपयोगिता बनाए रखने के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस अंक का ताना–बाना रचा गया है जो सभी को पसंद आएगा। आप सभी सुधी पाठकगणों से इसकी गुणवत्ता को संवारने में योगदान की अपेक्षा निरंतर रहेगी। मैं इस पत्रिका के प्रकाशन में सहयोगी रहे संस्थान के सभी अधिकारियों / कर्मचारियों को इस अंक के प्रकाशन के लिए बधाई देता हूँ।

शुभकामनाओं के साथ।

बीकानेर
अगस्त 2015

¼lrh'k dqekj 'kekZ½

# lEikndh;-

भाषा एक बहते नीर की तरह होती है। परिवर्तन की नाव उसमें हमेशा चलती रहती है। भाषा समाज का गौरव होती है। भाषा राष्ट्रवादिता का प्रतीक भी होती है। संवैधानिक दायित्व के पालन के अन्तर्गत राजभाषा हिंदी की निरंतर प्रगति सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है। केन्द्र सरकार के कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम किए जाते हैं। सभी कार्यालय अपने–अपने संसाधनों के अंतर्गत कार्य करते हुए अलग–अलग स्वरूप में हिंदी के प्रगामि प्रयोग को बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

राजभाषा में आलेख लेखन की प्रवृति को पुष्ट करने के लिए यह संस्थान राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' का वार्षिक प्रकाशन करता है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य राजभाषा हिंदी की प्रगति के साथ–साथ किसानों एवं जन साधारण तक उनकी अपनी भाषा में शुष्क बागवानी फसलों की नव तकनीकी उपलब्ध कराना भी है।

प्रस्तुत अंक में हमने शुष्क बागवानी के क्षेत्र में ऊतक संवर्धन के कार्य से लेकर फलों एवं सब्जियों को उगाने, समेकित कीट–रोग प्रबंधन तथा मृदा में अवस्थित पोषक तत्वों से संबंधित लेखों को शामिल किया है। इन सब के अतिरिक्त छोटे बच्चों में होने वाली जानलेवा बीमारी 'डायबिटिक' की रोकथाम के लिए आहार पर किए गये शोध का आलेख भी इस अंक में समाहित किया है। अवप्रयोगी सब्जी फसल 'केर' तथा बहुप्रिय फल फसल 'जामुन, खजूर एवं इमली' की खेती से संबंधित लेखों को भी इस अंक का आकर्षण बनाया है।

हम आशा करते हैं कि इस अंक से भी आपको पूर्व अंकों की भांति ही लाभ होगा और शुष्क बागवानी से संबंधित नव तकनीकियों से रू–ब–रू होने का अवसर मिलेगा। आपके सहयोग और भरोसे हेतु आग्रह रहेगा। आगामी अंकों को आपके अनुसार रूचिकर बनाने के लिए हमें, आपकी सक्रिय प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

धन्यवाद।

**lEiknd e.My**

# Ckkxokuh esa ikni Ård lao/kZu rduhd dk ;ksxnku

**ifjp; %&** पादप ऊतक संवर्धन तकनीक का बागवानी फसलों में प्रवर्धन, अवधारणा तथा इनके सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका है। सन् 1902 में हेबरलेडेन्ट द्वारा पादप ऊतक संवर्धन की जनधारणा प्रस्तुत की गई थी। आज के समय पादप ऊतक संवर्धन दूसरी कई विकसित तकनीकियों की तरह ही अच्छी, विश्वसनीय तथा प्रचलित तकनीक है। प्रारंभ में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक का उपयोग एक सीमित अनुसंधान के रुप में कुछ ही प्रयोगशालाओं तक था। सन् 1980 के बाद इसका विस्तार दुनियाभर की वाणिज्यक प्रयोगशालाओं की स्थापना के साथ शुरु हुआ। बागवानी उद्योग से कई प्रकार के पादपों का सूक्ष्म प्रवर्धन विधि द्वारा क्लोन का विकास किया गया। इस तरह इस तकनीकी में कायिक भ्रूणोद्भव, कायिक संकरण व वायरस समूह पादप विधि द्वारा बागवानी की विभिन्न फसलों का विकास किया गया। इसके अलावा पादपों द्वारा उत्पादित पदार्थो का उत्पादन बड़े पैमाने पर करने के लिए बायोरियेक्टर तकनीक का भी व्यावसायिक उपयोग हो रहा है।

पादप ऊतक संवर्धन की कुछ प्रमुख विधियां निम्नलिखित अनुसार है।

- क्लोन प्रवर्धन / क्लोन प्रजनन
- कक्षीय प्ररोह गुणन
- सीधा अंगोद्भव
- कैलस से अंगोदभव
- कायिक भ्रूणोदभव
- वायरस विलोपन
- इन विट्रो ग्राफ्टिंग
- इन विट्रो जीन बैंक
- कायिक विभिन्नता
- जैव विविधता का संरक्षण
- उत्परिवर्तन
- इनविट्रो चयन
- परागकोश / सुक्ष्मबीजाणु संवर्धन – अगुणित पादपों का उत्पादन
- जीवद्रव्य संवर्धन(कायिक संकरण)
- कोशिका संवर्धन
- डीएनए रुपान्तरण प्रणाली
- रुपान्तरित कोशिका के पुनरोत्पादित का प्रतिलाभ
- द्वितीचक उपापचयमों का उत्पादन (बायोरियेक्टर में जैवसंश्लेषण द्वारा)

उपरोक्त विधियों का महत्व केवल क्लोनीय प्रवर्धन में न निहित होकर पादपों के विकास, इनके सुधार, आणविक जीवविज्ञान और जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान के क्षेत्र में भी किया जाता है। पादप ऊतक संवर्धन के अनुप्रयोग को कृषि बागवानी के क्षेत्र की सीमा में सीमित नहीं किया जा सकता, इसका पर्यावरण सुधार व औद्योगिक महत्व भी दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

तेजी से जनसंख्या वृद्धि के साथ, फलों, सब्जियों व विभिन्न सजावटी पौधों को सीमित क्षेत्र में उत्पादित करके विकासशील देशों में लोगों की मांगों को पूरा नहीं किया जा सकता। परन्तु पादप ऊतक संवर्धन तकनीक द्वारा बागवानी फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। इस लेख में बागवानी क्षेत्र में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक की उपलब्धियों, सीमाओं मौजूदा तथा संभवित अनुसंधान तथा इसके विकास के क्षेत्र पर ध्यान केंद्रीत करने के लिए प्रकाश डाला गया है।

## l{e io/ku

सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा प्रयोगशालाओं में नियंत्रित वातावरणीय माध्यम में पादपों में क्लोन उत्पादन किया जाता है, या हम कह सकते हैं कि इन विट्रो माध्यम में पादपों का गुणन करना, सूक्ष्म प्रवर्धन है।

Ård lo/ku l rS;kj ylMk d ik/k

यहाँ इन विट्रो या नियंत्रित वातावरण माध्यम का अर्थ है कि पादपों के गुणन के लिए कृत्रिम माध्यम में उचित तापमान, उचित गैस तथा पोषक तत्वों की समुचित आपूर्ति तरल व अर्धठोस माध्यम द्वारा उपलब्ध करवाना है। पादप ऊतक संवर्धन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि पादप कोशिकाओं में एक पूरा पादप पुनजिर्वित करने की क्षमता किस प्रकार की है। पादप के एकल कोशिका प्रोटोब्लास्ट (बिना कोशिका भिति युक्त कोशिका), पत्ती व जड़ आदि हिस्सों को लेकर उन्हें उचित पोषक तत्वों व हार्मोन द्वारा निर्मित संवर्धन माध्यम पर संवर्धन करवा के एक संम्पूर्ण पादप को विकसित किया जा सकता है। सूक्ष्म प्रर्वधन/ऊतक संवर्धन वर्तमान में एक मंहगी विधि है।

xkfB, drkdk e tMk dk fodkl

सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा कम समय में मातृ पादप के छोटे भाग से अत्यधिक संख्या में पादपों को तैयार किया जा सकता है। यह पादप प्रजातियों पर निर्भर करता है कि उनका कौनसा भाग, जैसे– शीर्षप्ररोह, पत्ति, पार्श्वकली, तना व मूल के ऊतक इत्यादि से पादप का निर्माण शीघ्र कर सके, जो कि सूक्ष्म प्रवर्धन का अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू है। जब पादप को ऊतक संवर्धन माध्यम में रखा जाता है। तब काफी संख्या में पार्श्व कलियों तथा शीर्ष प्ररोह का विकास होने लगता है। कभी–कभी सीधे कैलस से ही प्ररोह विभेदिकरण हो जाता है। इस तरह से मूल विकास के लिए विस्तृत संख्या में प्ररोह प्राप्त हो जाते हैं। उसके पश्चात मूल वृद्धि हेतु ऑक्सिन होर्मोन का प्रयोग कर सुविकसित नवोद्भिद् पादपो को तैयार किया जाता है। इसके बाद उपयुक्त कंटेनरों की सहायता से हरितगृह व इसके पश्चात खेतों में स्थापित कर दिये जाते हैं।

सूक्ष्म प्रर्वधन द्वारा उत्पन्न पादप कायिक प्रवर्धन द्वारा उत्पन्न पादपों से बहुत समानता रखते हैं। इसलिए सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीक का उपयोग करने से पहले उन पादपों का चयन आवश्यक है, जिनका बाजार मूल्य अधिक होता हो तथा जो प्रयोगशाला के लिए अधिक रुप से व्यवहारिक हो। क्योंकि पादप ऊतक संवर्धन एक बहुत श्रमगहन व खर्चीली प्रक्रिया है।

## l{e io/ku d ykHk

1. आनुवंशिक रुप से समान या वांछित गुणों के साथ केवल एक पादप कर्त्तोत्रक के द्वारा कम समय में कई हजारों पादपों का गुणन किया जा सकता है। एक बार संवर्धन के स्थापित होने के बाद कई पादप सूक्ष्म कटिंगस् प्राप्त की जा सकती है। इन पादपों को बिना किसी बाहरी वातावरणय बाधा के ग्रीन हाऊस में बड़ा किया जा सकता है।
2. पादपों का उत्पादन बिना बीज के द्वारा हो जाता है।
3. उन पादपों का उत्पादन भी किया जाता है जिनकी पादप कोशिका में आंशिक हेरफेर किया गया हो। सूक्ष्म प्रर्वधन विधि द्वारा उचित मात्रा में नर्सरी के

मालिक तेजी से सजावटी पादपों के क्लोन तैयार कर सकते है।

4. पादपों का निर्जमीकृत डिब्बों में उत्पादन करने से रोग व कीटों के प्रभाव को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।
5. कुछ ऐसे पादपों का उत्पादन इस विधि से होता है, जिसमें बीज से पादप बनने की क्षमता कम होती है। जैसे आर्किड व नेपेन्थस।
6. प्रत्येक पादप को वायरल संक्रमण से दूर रखा जा सकता है, तथा साफ–सुथरे मूलवृंत का निर्माण तेजी से किया जा सकता है ।

## lw{e izo/ku rduhd

सूक्ष्म प्रर्वधन तकनीक का आधारीय प्रोटोकॉल अच्छे से 1960 में स्थापित हुआ जो पूरी कृषि अनुसंधान क्षेत्र व उद्योगों में विकसित हुआ। पादप कोशिका का विकसित या विभाजित करने के लिए सर्वव्यापक माध्यम एमएस माध्यम (मुराशिन एवं स्कुग, 1960) का उपयोग किया गया। इस माध्यम पर बहुत मात्रा में पादपों का गुणन किया गया। लेकिन कई पादपों, जातियों में ये माध्यम सफल नहीं रहा इसलिए वैज्ञानिकों ने अलग–अलग माध्यमों अथवा आवश्यक पोषक तत्वों को पादपों की आवश्यकतानुसार इनका उपयोग किया जैसे– गम्बोर्ग बी–5, (1968), व्हाईट (1963), लॉयड एवं मेककाउन (1981), नडसन,बी (1946), निट्स एवं निट्स (1968), इत्यादि।

Ård izo/ku ls rS;kj 'kgrwr dk ikS/k

आधुनिक पादप ऊतक संवर्धन का कार्य स्वच्छ वायु में किया जाता है। जीवित पादप भाग जो बाह्य वातावरण में है। उनकी बाह्य सतह सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा संदूषित होती है। इसलिए इन पादप भागों के कर्त्तोत्रक को सर्वप्रथम रासायनिक पदार्थों द्वारा सतही निर्जमीकरण किया जाता है। इसके लिए सोडियम हाइपोक्लोराइड, मरक्यूरीक्लोराइड, बेवस्टीन व एथाइल एल्कोहोल, इत्यादि रसायनों का उपयोग किया जाता है। मरक्यूरीक्लोराइड का उपयोग पादप निर्जमीकरण के लिए कम ही करना चाहिए, क्योंकि ये विषकारी पदार्थ हैं तथा इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता है। कर्त्तोतक को सामान्यतः ठोस संवर्धन माध्यम पर रखा जाता है, आवश्यक हो तो कभी कभी सीधे तरल माध्यम से भी डाल दिया जाता है। इस तरह के संवर्धन माध्यम को कोशिका निलंम्बन माध्यम से किया जा सकता है। ठोस व तरल माध्यम में अकार्बनिक लवण व कुछ कार्बनिक पदार्थ, विटामिन व पादप हार्मोस को मिलाकर बनाया जाता है। ठोस व तरल संवर्धन में अन्तर सिर्फ जेलिंग ऐजन्ट का होता है। तरल माध्यम में शुद्ध अगार पाउडर डालकर ठोस माध्यम को तैयार किया जाता है। माध्यम के संयोजन में विशेष तौर पर, पादप हार्मोनों व नाइट्रोजन स्त्रोत (अमोनियम लवण अमीनो अम्ल) का गहरा प्रभाव ऊतक के आकार पर पड़ता है। जिसके कारण प्रारम्भिक कर्तोंतक के विकास में सहायता से मिलती है। जैसे कि ऑक्सिन हार्मोन की उच्च मात्रा प्रायः मूल के विकास के लिए तथा साइटोकाइनिन की उच्च मात्रा प्ररोह के विकास के लिए उत्तरदायी होती है।

औक्सिन व साइटोकाइनिन की सन्तुलित मात्रा प्रायः असंगठित कोशिकाओं के समूह (कैलस) की वृद्धि की उत्तरदायी होती है, लेकिन आकारिकीय वृद्धि पादप जातियों व संवर्धन माध्यम संयोजन पर निर्भर करती है, जैसे संवर्धित कोशिका में वृद्धि है। इन कोशिकाओं को या इनके भारण को संवर्धन माध्यम में और वृद्धि या संवर्धित कोशिका के आकारिकीय परिवर्तन के लिए स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

यह ऊतक पादपों की निपुणता व अनुभव पर निर्भर करता है कि कौन सा भाग अगले संवर्धन माध्यम में स्थानान्तरित करता है और कौन सा नहीं। जैसे ही प्ररोह विकसित हो जाती है उसे ऑक्सिन युक्त संवर्धन माध्यम

में मूल के विकास के लिए डाल दिया जाता है। जिससे एक पूर्ण पादप का निर्माण हो जाता है। पादप परिपक्व अवस्था में आ जाता है तब निर्जमीकृत मृदा में स्थानान्तरित करके आगे की वृद्धि के लिए हरितगृह में रख दिये जाते हैं। जिसके बाद सामान्य पादप के रुप में वृद्धि करने लगते हैं। सूक्ष्म प्रर्वधन विधि में चार प्रमुख चरण होते हैं जो निम्न है:–

1. संवर्धन सूत्रपात
2. कली गुणन
3. पादप नवीनीकृत/पुनः उत्पादन
4. मूल विकास
5. दशानुकूलन / परिस्थिति अनुकूलन (कठोरीकरण) ग्रीन हाऊस में

## drksrd dk p;u

कर्तोतक पौधे का विलगन अंग और पृथक खंड होता है कर्तोतक का स्त्रोत ज्ञात होना आवश्यक होता है, अतः संवर्धन शुरु करने से पहले स्वच्छ, जिसमें कोई बीमारी न लगी हो ऐसे पादपों से कर्तोतकों का चयन करना चाहिए। कर्तोतकों के चयन के समय कई मापदंडों का ध्यान रखना आवश्यक है जैसे :–

- एक स्पष्ट जीनरुप या किस्म होनी चाहिए जिसका अच्छे से अध्ययन हुआ हो।
- मूल पौधे नवीन, स्वस्थ व रोग रहित हों।
- कर्तोतक बसंत या ग्रीष्म ऋतु में एकत्रित करने चाहिए क्योंकि इनकी ताजा वृद्धि इन्हीं ऋतुओं में होती है।
- किसी भी कर्तोतक में उसके विभाज्यों तक में तेजी से वृद्धि करने वाली कोशिकाएं उपस्थित होती हैं।
- कर्तोतक माप विभिन्न जातियों में अलग प्रकार के हो सकते है। इनका माप 0.1 से 1 सेमी. तक का हो सकता है। यह माप अलग–अलग जातियों की कोशिका की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है ।

Ård io/kZu ls rS;kj uhcw dk ik/kk

## ikni Ård lao/kZu dk mi;ksx

### 1- ikni jksxeqDr ik/ks dk fodkl

लगभग सभी पादप कई प्रकार के रोगों से प्रभावित होते हैं। जिनमें कवकीय, जीवाणुवीय, गोलकृमीय प्रमुख हैं। इन सभी का नियंत्रण अनेक प्रकार की औषधियों व रसायनों द्वारा किया जाता है। विषाणु युक्त पादप रोग का इलाज काफी कठिन है। इस कारण वायरस मुक्त पादपों का विकास ऊतक संवर्धन व रासायनिक/ऊष्मा की मिश्रित प्रक्रिया से सम्भव है। शिखाग्र विभज्योतक में प्रायः विषाणु प्रवेश नहीं कर पाते क्योंकि यहाँ की कोशिकाओं में उपापचय सक्रियता शिखाग्र या विभाजन तेजी से होता है तथा इस भाग में संवहनी न होने से विषाणुओं की अंतकोशिकीय गतिशीलता नहीं होती। इस कारण ऊतक संवर्धन प्रक्रिया में शिखाग्र विभज्योतक कोशिकाओं का उपयोग कर विषाणु रहित पादपों का विकास किया जा सकता है। कुछ आर्थिक रुप से प्रमुख पौधे जैसे गन्ना, सेब, रसभरी, तम्बाकु, अंगूर, ऑर्कडस् में इस विधि द्वारा रोग मुक्त पादपों का उत्पादन किया जा चुका है। भारत में आलू, संतरा एवं केला में भी इस विधि द्वारा इनका उत्पादन आरंभ किया जा चुका है।

### 2- vxqf.kr ikni fodkl

हमारी अधिकांश फसलें विषम युग्मजी हैं और प्रजनन प्रक्रिया में समयुग्मजी किस्मों को तैयार करने में कई वर्ष लग जाते हैं। विश्व में सर्वप्रथम गूहा व माहेश्वरी, 1960 तथा 1964 में धतूरे के पराग कोश से अगुणित पादपों का

विकास किया। इस विधि का अधिक उपयोग कर चीन के वैज्ञानिकों ने चावल की नई किस्मों का विकास किया। इसके अलावा गेहुँ, बाजरा, मक्का, तम्बाकु, टमाटर, मिर्ची, गोभी तथा एसपैरेगस को मिलाकर लगभग 200 पादपों की उन्नत किस्मों का उत्पादन हो चुका है। परागकोष एवं परागकणों का उपयोग कर परागकोषों में कोशिका विभाजन प्रक्रिया द्वारा भ्रूण निर्माण किया जाता है। जिनमें अगुणित गुणसुत्र उपस्थित होते हैं। इनके अंकुरण को अगुणित पादप बनाकर फिर उनसे द्विगुणीकारक रसायन (कोलचीसीन) का प्रयोग कर समयुग्मओं पादपों का निर्माण किया जाता है।

Ård io/ku l r;kj ukxQ.kh d ik/k

## 3- dkf;d Dyku fofo/krk

ऊतक संवर्धन प्रक्रिया का उपयोग पादपों में विधमान जननिक विविधता जो काइमेरल कोशिकाओं के रुप में पाए जाते हैं को पृथक करने में किया जाता है। बहुत से पादपों को कम स्थान व समरुप स्थिति में उगाया जाता है। फिर इसमें उत्पन्न विविधता को शीघ्र पहचान कर, उन्हें अलग करके उनका गहन अध्ययन किया जाता है। कुछ विभिन्नताएं लाभकारी सिद्ध होती हैं। कुछ फसलों जैसे गन्ना, आलू आदि में अधिक शर्करा मुक्त तथा लेटव्हाइट नामक रोगप्रतिरोधक आलूओं की नई प्रजातियों का विकास हुआ है। ये कायिक क्लोन विविधता गुणसूत्रों की संख्या आकार व क्रम में परिवर्तन के कारण होती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली ने न झड़ने वाली सरसों की किस्म व केन्द्रीय औषधी व सुंगध पादप संस्थान, लखनऊ द्वारा सिम्पोपोगोन सिंद्रोनेला की नई किस्म तैयार की है, जिसमें तेल की मात्रा 1.2—1.4 प्रतिशत अधिक है ।

## 4- Hkz.k cpko fof/k

दो अलग प्रजातियों के पौधों के मिलन से पैदा होने वाले भ्रूणों का परिपक्व होने से पहले ही विकास रुक जाता है। ऐसी अवस्था में यदि अपरिपक्व भ्रूण को निकालकर उपयुक्त वातावरण एवं संवर्धन माध्यम में रखा जाए तो, मिश्रित जाति व असंगत विनिमय से पादपों का उत्पादन किया जा सकता है।

## 5- dkf;d dkf'kdk ladj.k

जीवद्रव्यक या नग्न कोशिकाओं का विलगन और संवर्धन पद्धति द्वारा संकरित पादपों का विकास किया गया है। दो कोशिकाओं के संकरण से पूर्व एन्जाइम रसायन द्वारा कोशिका को हटाया जाता है क्योंकि कोशिका मिश्रित संकरण में बाधक होती है। इस विधि से मिश्रित गुणों वाले पादपों का विकास होता है। प्रो. कॉकिंग ने नाटिंघम में सन् 1960 में पिटुपिया पादपों का विकास किया था।

## 6- thu LFkkukUrj.k

कोशिका झिल्ली से युक्त कोशिकाओं सीधे अंतर्वेषन विधि या टीजे प्लास्मिड से जो एग्रोबेक्टीरियम ट्यूमीफिकसयन्स जीवाणु में उपस्थित होता है। इन विधियों का सहारा लेकर एक जाति के लाभकारी गुणों का दूसरी जाति के पादपों में प्रत्यावर्तन कर दिया जाता है। जिससे उन्नत किस्मों का उत्पादन होता है। चावल, गेहूँ एवं मक्का की उन्नत किस्मों में इन विधियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। तम्बाकू में भी स्द्रमप्टोमाईसन प्रतिरोधक गुणों का सफलता पूर्वक प्रत्यावर्तन किया जा चुका है।

## 7- dkf'kdk foyEcu rduhd

ऊतक या कोशिकाओं को तरल माध्यम में संर्वधन किया जाए तो कोशिकाओं का विस्तार अधिक तीव्र गति से होता है, परंन्तु इस तरह से संर्वधन माध्यम को निरन्तर गतिशील रखना आवश्यक है, जिससे उन में वातन होता रहे। कोशिकाओं व ऊतकों की अनुक्रिया पादपों की किस्मों पर निर्भर करती है।

आधुनिक युग में विलम्बित कोशिका संर्वधन तकनीक का उपयोग कई प्रकार की औषधी निर्माण में किया जाता है। कोशिकाएं अपनी वृद्धि के लिए कुछ रसायनों का

उपयोग संर्वधन माध्यम से करती हैं, तथा कुछ पदार्थो का माध्यम में निक्षालन करती हैं। इन निक्षालित तत्वों में एल्केलॉयडस, स्प्राक्युनॉक्स, फिनोलिक्स एवं वन्यशील तेल सम्मिलित हैं। औषधी उद्योग में कई हजार लीटर के बायोरियेक्टर में कोशिका विलंबन द्वारा औषधि निर्माण किया जा रहा है। इस विधि के प्रयोग से रोग प्रतिरोधक, लवण एवं ताप सहनशील आदि महत्वपूर्ण गुणों युक्त पादपों का विकास किया जाता है।

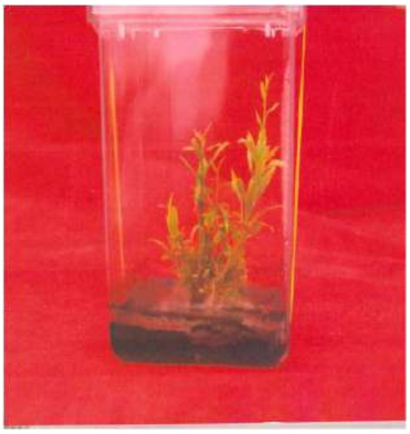

dj dk Ård lof/kr ik/kk

## 8- fge'khru fof/k }kjk ifjj{k.k

पादप ऊतक या कोशिकाओं को विशेष रसायनों की उपस्थिति में धीरे–धीरे ठंडा करके 196⁰ सेल्सियस तक रखा जाता है और इस तापमान में उन कोशिकाओं की समस्त जैव रासायनिक तथा उपापचय सक्रियता अस्थायी रुप से थम जाती है, परन्तु उनमें जीवन क्षमता का ह्रास नही होता है। इन ऊतकों को पर्याप्त समय तक रखा जा सकता है। इन ऊतकों का उपयोग उपयुक्त समय आने पर किया जा सकता है। इस विधि द्वारा विशेष श्रेणी के पादपों का जीवद्रव्य संचित कर भविष्य में किये जाने वाले प्रयोगों के लिए सुरक्षित रखा जा रहा है।

## fu"d"k

सामान्यतः कृषि फसलों के सुधार, गुणन एवं प्रवर्धन में पादप ऊतक संवर्धन तकनीकी का एक महत्वपूर्ण योगदान है, जो अन्य एक अच्छी तरह स्थापित तकनीकी के रुप में उभरी है। आने वाले वर्षों में यह तकनीक अपने आप में तथा एक सहायक के रुप में आण्विक जीव विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहेगी। इन तकनीकों के द्वारा जैविक प्रक्रियाओं जैसे–कायिकीय तथा जैव रसायनिक व आण्विक पहलुओं के अनुसंधान के क्षेत्र में काफी मदद मिलती है। विभिन्न हार्मोनों के प्रभाव व स्वपात्रे पादपों के विकास व वृद्धि जैसे कई मुद्दों से जुड़े प्रश्नों के उत्तर इन तकनीकों से मिल सकते हैं। वांछित लक्षणों से युक्त पादपों को तैयार करके बागवानी के क्षेत्र में काफी उन्नति की जा सकती है और यह संस्थान इसी दिशा में प्रयासरत है।

धुरेन्द्र सिंह[1], अर्जित चतुर्वेदी*, ईशू अरोड़ा*, करूण गुर्जर*, और पी.एन. सिवलिंगम[2]

*[1]अध्यक्ष, फसल सुधार विभाग, [2]वैज्ञानिक, *एस आर एफ*
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

Hkkjrh; df"k vuql/kku ifj"kn] ubl fnYyh ds egkfun'kd Mk- ,l- v¸;Iiu lLFkku dh tio rduhdh i;kx'kkyk e Ård lof/kr ik/kk dh tkudkjh yrs g,A

# e#/kjk esa [ktwj dh [ksrh

खजूर एक प्राचीनतम फल है। ऐसा माना जाता है कि फलों की खेती में खजूर की खेती सबसे पहले शुरू हुई थी। ईराक में 'उर' नामक जगह पर इसकी उत्पत्ति के साक्ष्य मिलते हैं। वैसे उत्पत्ति स्थान फारस की खाड़ी माना जाता है। आजादी से पूर्व हमारे देश में पंजाब प्रांत में इसकी खेती बहुतायत में होती थी। अब गुजरात के कच्छ क्षेत्र में अधिकाशतः खजूर उगाया जाता है। यह गर्म–शुष्क जलवायु में उगाया जाने वाला फल वृक्ष है, जिसका वानस्पतिक नाम *फीनिक्स डेक्टीलीफेरा* है। खजूर के पौधे एक बीज पत्रीय होने के कारण मूसला जड़ें नहीं होती हैं लेकिन जड़ें एक–दो मीटर से भी अधिक गहराई तक जमीन में जाती है। इसके पौधों में सूखा, लवणता तथा अत्यधिक शुष्क गर्म वातावरण सहने की क्षमता होती है। मातृ पौधे से भूःस्तारी (सकर्स) निकलते है जिनसे पौध प्रवर्धन किया जाता है। बीजू पौधों में फल की गुणवत्ता एवं उत्पादन में भिन्नता होती है। इसका उपयोग ताजा फल खाने के अलावा विविध उत्पाद बनाने में होता है।

खजूर के फल बहुत पौष्टिक व शक्तिवर्धक होते हैं। फलों के गूदे में लगभग 20 प्रतिशत नमी के अतिरिक्त 60–65 प्रतिशत शर्करा, लगभग 2.5 प्रतिशत रेशा, 2.5 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत से कम वसा व खनिज तत्व तथा विटामिन ए, विटामिन बी–1 (थायमीन), विटामिन सी, नियासिन तथा विटामिन बी–2 (राइबोफ्लेबिन) पाए जाते हैं। एक किलोग्राम खजूर के फलों से लगभग 3100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। खजूर के फलों का सेवन रक्तवर्धक तथा कब्ज दूर करने में सहायक होता है। पौष्टिकता के अलावा इसमें औषधीय गुण भी पाये जाते हैं। इसके फल प्रायः पूर्ण पके अवस्था (पिण्ड) में खाए जाते हैं। कुछ किस्मों के फलों को अधपकी अवस्था (डोका) में जिसमें सर्वाधिक मिठास होने से ताजे फल के रूप में खाए जाते है। डोका अवस्था के फलों से अच्छी गुणवत्ता के छुहारे बनाये जाते है। पूर्ण पके फलों से शर्करा, स्टार्च, सिरका, अर्क, रस, टाफियाँ, मदिरा इत्यादि अनेकों उत्पाद बनाए जाते हैं। डोका अवस्था के फलों से चटनी, स्क्वैस (आर.टी.एस.) अचार, जैम व सीरप बनाया जा सकता है। गुठली का उपयोग पशु आहार बनाने में होता है। खजूर की पत्तियाँ टोकरी, पखें, झाडू व रस्सी बनाने के काम में आती है। तने का उपयोग अस्थाई झोपड़ी बनाने के लिए किया जाता है।

पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व जोधपुर क्षेत्र खजूर उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इन जिलों के अतिरिक्त चूरू, श्री गंगानगर व नागौर जिलों के कुछ भाग, पंजाब में अबोहर, फाजिल्का, भंटिडा, हरियाणा में सिरसा, भिवानी, हिसार व गुजरात के कच्छ क्षेत्र में इसकी खेती की अपार संभावनाएं हैं। इसकी महत्वता को देखते हुए अभी विदेश से आयातित ऊतक सवंर्धित पौधे शुष्क क्षेत्र के सात–आठ जिलों में लगभग 800 हेक्टेयर क्षेत्र में लगाये गये है। जिनमें बीकानेर जिले में लगभग 250 हेक्टेयर क्षेत्र में खजूर की बरही, मेडजूल, खुनैजी, जामली, सगाई व खलास किस्मों के पौधे लगाये गये हैं जिनमें फलत भी आरम्भ हो चुकी है। तमिलनाडू राज्य के कुछ क्षेत्र में खजूर के पौधे लगाये गये है जो फलत में है। गुजरात के कच्छ क्षेत्र में ऊतक संवर्धित अधिकतर बरही किस्म के पौधे लगाये गये है जो फलत अवस्था में हैं। देश के गुजरात राज्य में सबसे अधिक क्षेत्र लगभग 17072 हे. में लगे पौधों से लगभग 137476 मिट्रिक टन खजूर फल का उत्पादन होता है। खजूर की अगेती, मध्यम तथा पछेती पकने वाली किस्में उपलब्ध हैं जो ताजा फल खाने एवं फलोत्पाद बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। खजूर की अधिकांश किस्में, सउदी अरब, ओमान, ईराक, इरान, मिस्त्र, देशों से आयात की गई हैं।

Qyk l ynh [ktj d iM

## [ktj dh ie[k fdLe

- **gykoh** % फल डोका अवस्था में पीले, मीठे, औसत वजन 12.6 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31 प्रतिशत होता है। फल जल्दी पकते हैं। औसत उपज 60–80 किग्रा. प्रति वृक्ष।

- **cjgh** % फल डोका अवस्था में सुनहरे पीले रंग के मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। औसत वजन 13.7 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31.5 प्रतिशत होता है फल अगस्त के मध्य तक पकते हैं। उपज 100–120 किग्रा. प्रति वृक्ष।

Qyk l ynh cjgh fdLe

- **eMtwy** % फल डोका अवस्था में पीला नांरगीपन लिए हुए, कसैले, काफी बड़े एवं आकर्षक होते है। औसत वजन 22.7 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 34.5 प्रतिशत तथा फल देरी से पकते हैं। औसत उपज 75 किग्रा. प्रति वृक्ष।

- **tkfgnh** % फल डोका अवस्था में पीले एवं कसैले, काफी ठोस तथा उनका छिलका काफी चिकना एवं सख्त होता है। फल वर्षा होने पर आसानी से खराब नहीं होते हैं। पिंड अच्छे बनते हैं। औसत वजन 10.1 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 35.5 प्रतिशत होता हैं। फल देरी से पककर तैयार होते हैं। औसत उपज 100–120 किग्रा. प्रति वृक्ष ।

- **[kykl** % फल डोका अवस्था में पीले एवं मीठे, औसत वजन 15.2 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 25 प्रतिशत तथा परिपक्कता की अवधि मध्यम होती है। औसत उपज 70–80 किग्रा. प्रति वृक्ष।

- **[kuth** % फल डोका अवस्था में गहरा लाल, मीठे, गूदा कुरकुरा एवं स्वादिष्ट होता है। औसत वजन 10. 2 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 43 प्रतिशत होता है फल जल्दी पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 50–60 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

[kuth vkj eMtwy fdLek d Qy xPN

- **[knjkoh** % फल डोका अवस्था में पीला–हरापन लिए हुए कसैले, औसत वजन 12.9 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होती है। परिपक्वता अवधि मध्यम होती है। डोका अवस्था व उसके बाद की अवस्था में फलों को वर्षा व अधिक वातावरणीय नमी से

बहुत अधिक हानि होती है। छुहारा व पिंड खजूर के लिए उपयुक्त, वृक्ष बौना एवं औसत उपज 50–60 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

## ikS/k izo/kZu ,oa jksi.k

पौधों का प्रवर्धन वांछित किस्म के अच्छी गुणवत्ता वाले मादा मातृ वृक्षों के सकर्स (अंतःभूस्तारी) द्वारा किया जाता है जिससे कि नव विकसित पेड़ भी मातृ वृक्षों जैसी गुणवत्ता वाले ही हों। बीज द्वारा प्रवर्धन होता है। लेकिन नर व मादा पुष्प अलग–अलग पौधों पर आते हैं। बीजू पौधों से प्रवर्धन व्यवसायिक तौर पर नहीं होता क्योंकि देरी से फलन् तथा उपज व गुणवत्ता में भिन्नता होती है। खजूर के पौधों पर बहुत कम तापमान/पाला का प्रभाव नहीं देखा गया हैं। परन्तु बीजू पौधों का उपयोग फसल सुधार/चयन हेतु किया जा सकता है।

खजूर के पौधों को उचित दूरी पर लगाना बहुत आवश्यक हैं क्योंकि इसका वृक्ष कम से कम 40–50 वर्षों तक फलत देता है। पौधों को प्रायः कतार तथा पौधे से पौधे की आठ मीटर की दूरी पर लगाते है। वैसे पौधे से पौधे की दूरी आठ से दस मीटर तक रखी जा सकती है, जिससे कि पौधों का समुचित फैलाव तथा कतारों के बीच में किये जाने वाले कृषि क्रियाएं आसानी से की जा सके। एक हेक्टेयर खेत में 158 पौधे लगाये जा सकते हैं। खेत में परागण हेतु नर किस्मों के पौधों का होना अतिआवश्यक है इसके लिए बाग में लगभग 5 प्रतिशत नर पौधे लगाये जाने चाहिए। पौधों की रोपाई सिंचाई सुविधा होने पर फरवरी–मार्च माह में किया जा सकता है लेकिन खजूर के पौध रोपण का उचित समय अगस्त–सितम्बर उपयुक्त पाया गया है। नव रोपित पौधों का समय–समय पर सिंचाई, निराई, गुड़ाई करने से पौधे अच्छी प्रकार से पनपते हैं।

खजूर के पौधों में परागण के साथ फरवरी–मार्च में नर व मादा पुष्पगुच्छ अलग–अलग पौधों पर आते हैं तथा अच्छी फलत के लिए परागण कराना अतिआवश्यक होता है। सर्दियों में अधिक दिनों तक कम तापमान रहना, वर्षा व मौसम परिवर्तन के कारण नर व मादा पुष्पक्रम खिलने में भिन्नता देखी गयी है। अतः परागकणों की व्यवस्था रखना आवश्यक है। परागकण के लिए नर किस्म जैसे घनामी, एल इन सिटी या बीजू पौधे बाग में लगे होने चाहिए। परागकण को कम तापमान (फ्रीज) में एक वर्ष तक संरक्षित रखा जा सकता है। इसके फल जून–जुलाई में परिपक्व होकर किस्मानुसार तुड़ाई के लिए तैयार होते है। हमारे देश में अधिकांशतः फलों के गुच्छों को अधिकतर डोका (खलाल) पीला या लाल फल रंग अवस्था में ही वृक्षों से काट लिया जाता है। कम वर्षा वाले क्षेत्र में प्रायः डांग अवस्था में कटाई की जाती है। जबकि अरब देशों में खजूर के फल पूर्ण परिपक्व (पिंड अथवा 'तमर') होने पर वृक्ष से काटकर उतारे जाते हैं। उन देशों की भूमध्य सागरीय जलवायु में वर्षा अक्टूबर–नवम्बर के बाद होती है अतः वृक्ष पर ही पूर्ण फल पकने की क्रिया पूरी होकर पिण्ड अवस्था (तमर) आ जाती है। जबकि भारत में फल पकने के समय (जुलाई माह) वर्षा प्रारंभ हो जाने से वृक्ष पर पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता हैं।

| mUur fdLe | vko';d vif{kr x.k | mi;ksx |
|---|---|---|
| हलावी, बरही, खलास, खुनैजी, सेवी, ब्रेम | डोका अवस्था में मिठास का होना | डोका अवस्था के फल ताजे खाने के लिए |
| हलावी, जैहिदी, शामरान, खलास | फल तुड़ाई के समय पूर्ण डोका/डांग अवस्था में हों | पिण्ड खजूर बनाने के लिए |
| मेडजूल, शामरान, खाद्रवी, दयारी | फलों में गूदे की मात्रा अधिक हो | छुहारा के लिए |
| जगलूल, हयानी, अमसोक, ब्रेम, सदामी, सूरिया, अन्य स्थानीय किस्में | आकर्षक रंग, रसीला, महक वाले लाल व पीले रंग के फल। ताजे हरे व पीले फल (सब्जी व अचार के लिए) | खजूर के पेय एवं परिरक्षित उत्पाद जैम, चटनी अचार बनाने के लिए |

कभी–कभी वर्षा में देरी होने पर जैसलमेर क्षेत्र में वृक्ष पर ही पिण्ड अवस्था आ जाती हैं। कुछ किस्मों के फल डोका अवस्था पर कसैले होते हैं। जिनका उपयोग मूल्य संवंर्धित उत्पाद बनाने में किया जाता है। वैसे भी डोका फल थोड़ा कठोर होने के कारण ताजे फल के रूप में अधिक मात्रा में नहीं खाये जा सकते हैं।

**flapkbZ** – खजूर के वृक्षों की समय–समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सर्दियों में सप्ताह में 1 बार तथा गर्मियों में सप्ताह में 2 बार सिंचाई करनी चाहिए। पुष्पन से 15 दिन पहले सिंचाई बहुत आवश्यक है तथा फल बनने से फल पकने तक नियमित रूप से सिंचाई करनी चाहिए अन्यथा फलों के आकार, वजन एवं गुणवता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोलिथिन अथवा पलवार (मल्च) बिछाने से भूमि में मृदा नमी संरक्षण के साथ–साथ फलों की गुणवता में सुधार देखा गया है।

**iks"k.k &** खजूर के वृक्षों से उचित उपज एवं गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त करने हेतु समुचित पोषण की अत्यधिक आवश्यकता है। इस हेतु पूर्ण फलत में आए हुए 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के वृक्षों को प्रति वर्ष भूमि में बने थावलों में 1.5 किग्रा. नाइट्रोजन, 0.75 किग्रा. फास्फेट, 0.5 कि.ग्रा. पोटेशियम, 50 कि.ग्रा. गोबर का सड़ा खाद एवं 250 ग्रा एस्पोजिलम एवं पी. एस. बी. कल्चर (मिश्रण) देना चाहिए। नाइट्रोजन हेतु यूरिया, फास्फेट हेतु सिंगल सुपर फॉस्फेट, पोटेशियम हेतु म्यूरेट आफ पोटाश प्रयोग में लाया जा सकता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं अन्य उर्वरकों, गोबर की खाद एवं कल्चर मिश्रण की पूरी मात्रा अक्टूबर–नवम्बर माह में देवें तथा नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फरवरी–मार्च के महीने में देवें। उर्वरक एवं गोबर की खाद मुख्य तने से 1.5 मीटर दूरी पर 30 सेमी. गहरी खाई खोदकर चारों तरफ दें।

**vUr%dk'r** – उद्यान में कतारों के बीच खाली जगहों को दलहनी फसले जैसे चना, मटर, ग्वार, तिलहनी फसले जैसे सरसों, सब्जियां, चारे वाली फसलें एवं छोटे आकार के फल वृक्षों जैसे फालसा को अन्तरकाश्त के रूप उगाया जा सकता है इससे अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

**o{kks dh l/kkbZ ,oa dkV&NkV** – खजूर के पौधों में प्रायः सधाई की आवश्यकता नहीं होती। इसमें तना सीधा बढ़ता है तथा शाखाएं भी नहीं निकलती हैं। समय–समय पर आवश्यकतानुसार अधिक पुरानी अथवा सूखी, रोग व कीट ग्रसित पत्तियों का निकालने रहना चाहिए। पुरानी पत्तियों में प्रकाश संशलेषण क्षमता कम हो जाती है। अच्छी फलत हेतु एक वृक्ष पर लगभग 80–100 पत्तियॉं होनी चाहिए। जैसे –2 पौधे की आयु बढ़ती है मुख्य तने से पौधे की पत्तियां काट देनी चाहिए जिससे कि वह उद्यान में विभिन्न अन्तःशस्य क्रियाओं में बाधक न बने। पत्तियों की कटाई का समय फलों की तुडाई के पश्चात दिसम्बर तक होता हैं। पत्तियों की कटाई के अलावा वृक्ष के समुचित विकास हेतु उसमें से निकलने वाले अन्तः भूस्तारी को पूर्ण रूप से विकसित होने के पश्चात शीध्र से शीध्र निकाल देना चाहिए तथा उन्हें खजूर के नये उद्यान विकसित करने में लगाना चाहिए। ऐसा करने से खजूर का वृक्ष उनके द्वारा लिए अतिरिक्त आवश्यक तत्वों के पोषण से मुक्त हो जाता है। खजूर में पुष्प गुच्छों के विकसित होने के पश्चात पत्तियों के डठलों से कांटे निकालना आवश्यक है इससे उनके आस–पास के विभिन्न कार्य जैसे परागण, फल गुच्छों की छटाई, डंठल मोडना, छिड़काव, थेलियां लगाना, फल कटाई इत्यादि सुगमता की जा सके।

**ijkx.k ,oa Qyu** – खजूर में नर एवं मादा पुष्पक्रम अलग–अलग फल वृक्षों पर होते हैं तथा परागण कृत्रिम रूप से किया जाता है। इसके लिए परागकणों को रूई के फाहों की सहायता से मादा पुष्प क्रमों पर पुष्पों के खिलने के तुरन्त पश्चात प्रातःकाल छिड़क कर अथवा नर पुष्प क्रमों के साथ बांध कर किया जाता है। इस क्रिया को 2–3 दिन तक दोहराना चाहिए। विकल्प के तौर पर नर पुष्पक्रम की लड़ियां खुले मादा पुष्पक्रम में उल्टी करके हल्की से बांध दी जाती हैं तथा इस प्रकार धीरे–धीरे परागकण मादा पुष्पक्रम पर गिरते रहते हैं।

**dhV ,oa 0;kf/k fu;U=.k** – खजूर के वृक्षों को दीमक, स्केल कीट इत्यादि से हानि पहुंचती है। स्केल कीट पत्तियों का रस चूसकर हानि पुहंचाते है इसके नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावी प्रभावित पत्तियों को काट देना चाहिए

तथा डाई मिथोएट 1.5 मि.ली. प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। दीमक के नियन्त्रण हेतु क्लोरोपाइरीफॉस 1 मिली. प्रति लीटर के हिसाब से थावलों में देना चाहिए। फल पकने के पूर्व में मैना, तोता, बुलबुल, आदि पक्षी हानि पहुंचाते हैं। इनके नियन्त्रण हेतू फल गुच्छों को डोका अवस्था प्रारम्भ होने से पहले लोहे की जालिओं (3x3 मिमी. छेद से बनाएं पिजरों) द्वारा ढकने से नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। खजूर में ग्रेफिओला लीफ स्पाट या स्मट बीमारी अधिक आर्द्रता वाली स्थिति में अधिक होती है। पत्तियों को दोनों सतह पर असंख्य भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं तथा पत्तिया सूख जाती है प्रभावित पत्तियों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए तथा कॉपर आक्सो क्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के धोल का 2–3 छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

**Qyk dh rMkb ,o mit –** खजूर फल वृक्ष को पूर्णफलत में आने में 5–6 वर्ष का समय लग जाता है तथा इसके पौधों से 40–50 वर्षों तक उत्पादन लिया जा सकता है। खजूर के फल पूर्ण डोका अवस्था अथवा उसके पश्चात तुड़ाई योग्य होते हैं। जब पूरा गुच्छा परिपक्व हो जाता है तो उसे डंठल समेत काट लिया जाता है। परिपक्व डोका अवस्था पर फल गुच्छों की कटाई करनी चाहिए ताकि वर्षा से फल खराब न हो सके। खजूर में फल परिपक्व अवस्था पर वर्षा हानिकारक होती है। अपरिपक्व फल तुड़ाई के पश्चात नहीं पकते पूर्ण रूप से फलत में आए वृक्ष से (10 वर्ष अथवा अधिक आयु) औसत प्रति वृक्ष प्रति वर्ष 60–120 कि.ग्रा. ताजे फलों की उपज प्राप्त की जा सकती है जो किस्म, जलवायु तथा बाग–प्रबंधन पर निर्भर करता है।

## Qyk dk eY; lo/ku

खजूर से जैम, स्क्वैश, आर. टी. एस, चटनी एवं छुहारा बनाने के लिए भी फलों को पूर्ण डोका अवस्था में ही तोड़ा जाता है। डोका फल के गूदे से स्वादिष्ट चटनी, जैम, स्क्वैस (पेय) अचार आदि परिरक्षित पदार्थ तैयार कर अधिक समय तक भण्डारित कर रख सकते हैं जबकि डोका फल दो–तीन दिन में ही अधिक नमी के कारण खराब होने लगते हैं। शर्करा की अधिक मात्रा होने के कारण पिण्ड खजूर और छुहारा को लम्बे समय तक सुरक्षित रख कर उपयोग में लाया जाता है। खजूर के फलों से मदिरा भी बनाई जाती हैं। इस प्रकार मरुक्षेत्र में खजूर की खेती कर पारिस्थिति विकास, पर्यावरण संरक्षण एवं फसल विविधिकरण से लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

रमाशंकर सिंह[1] एवं मीना कुमारी[2]

[1]*प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी), भाकृअनुप–केशुबास, बीकानेर–334006*

[2]*स्नात्कोतर छात्रा (उद्यान), कृषि महाविद्यालय, बीकानेर*

**noukxjh fyfi ljy o i.k oKkfud gA blh d vk/kkj ij fgUnh ,d ln< oKkfud Hkk"kk gA ble tl ckyk tkrk g] ol gh fy[kk Hkh tkrk gA**

# 'k"d {k=h; lCth Qly mRikknu dh mUur 0;oLFkk,¡

देश के उत्तर–पश्चिमी गर्म शुष्क क्षेत्र में अल्प वर्षा के कारण परम्परागत मिश्रित खेती में ग्वार, मोठ, बाजरा, मतीरा, काचरी, काकड़िया व टिण्डा के साथ स्थानीय पेड़–पौधों (खेजड़ी, झरबेर, बोरड़ी, कैर, कुमट, रोहिड़ा, लसोड़ा, फोग आदि) एवं घासों (सेवण, धामण, भरुट आदि) का उत्पादन किया जाता है। कृषि में व्यावसायिक जागरूकता, फल–सब्जी व नगदी फसलों की बढ़ती माँग के साथ बाजार में उचित भाव तथा सीमित सिंचाई जल की उपलब्धता होने से यहाँ के किसान परम्परागत एवं अप्रचलित फसलों की खेती पर ध्यान देने लगे हैं। वर्षा आधारित (बारानी) या सिंचाई द्वारा सब्जी फसलों के उत्पादन से किसान पूरा लाभ नहीं ले पा रहे हैं जिसका कारण उन्नत किस्मों का अभाव, उपलब्ध किस्मों के बीजों का सरलता से नहीं मिल पाना तथा खेती में वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश नहीं करना प्रमुख है। मरुस्थलीय जलवायु अत्यधिक प्रतिकूल होने से यहां बागवानी फसलों के चयन में न केवल कठिनाई होती है, साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता एवं उत्पादकता को भी प्रभावित करती है अतः क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप किस्मों एवं तकनीकों के साथ सुनियोजित उत्पादन योजनाओं की आवश्यकता है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में विगत 20 वर्षों (1994–2014) से क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर किए गये अनुसंधान अध्ययनों से प्रतिकूल जलवायु में बागवानी फसलों की व्यावसायिकता व इनकी गुणवत्ता युक्त उत्पादन क्षमता तलाशने, संसाधनों का समुचित उपयोग तथा कृषि–बागवानी की रूकावटों एवं संभावनाओं जैसे महत्वपूर्ण घटकों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गये हैं। अत्यधिक कम वर्षा, लम्बी समयावधि एवं अधिक तापमान वाला ग्रीष्मकाल तथा सर्दियों में अत्यधिक न्यूनतम तापमान एवं पाले की स्थिति जैसी वातावरणीय रूकावटों में भी सुनियोजित फसलों का चुनाव, उनकी समयावधि को क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप उत्पादन प्रणालियों में समावेश तथा प्रबंधन कर व्यावसायिकता की प्रबल संभावनाएं आँकी गई हैं। इसके अंतर्गत फसलों को वातावरणीय प्रकोप के प्रभाव से बचाने एवं निश्चित उत्पादन के लिए प्रक्षेत्र में उचित कृषि–वातावरण तैयार करना एक सैद्धांतिक आवश्यकता मानी है। इस क्षेत्र में बागवानी के लिए विशेष फसल सुरक्षा एवं प्रबंधन की आवश्यकता है जो प्रभावशाली, स्थिर एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण हो, जिससे किसान उन्हें सहजता से अपना सके। इसी के साथ फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं गुणवत्ता युक्त उत्पादन के लिए उन्नत व नवोन्वेषित तकनीकों को प्रक्षेत्र प्रबन्धन व्यवस्थाओं में अपनाना होता है। इसके लिए मेरे द्वारा किये गये अनुसंधान कार्यों के आधार पर एक सुनियोजित योजना का सृजन किया गया है जिसको बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन नाम दिया है। अध्ययनों के आधार पर बागवानी में सब्जी के लिए खेजड़ी आधारित उत्पादन एवं प्रक्षेत्र प्रबंधन के योजनागत प्रारूप तैयार किये हैं तथा व्यवस्थाएं विकसित करने के लिए निम्नलिखित सैद्धांतिक बिन्दुओं का समावेश आवश्यक है :–

1) बागवानी में खेजड़ी आधारित फसल उत्पादन के लिए प्रक्षेत्र का चुनाव तथा प्रक्षेत्र/खेत के चारों ओर स्थानीय प्रजातियों के बहुपयोगी पेड़–पौधों व झाड़ियों का समावेश कर वायुरोधी पट्टिकाओं का सुनियोजित ढंग से विकास करना जिससे खेत में आवश्यक एवं अनुकूल कृषि–वातावरण तैयार किया जा सके। इस योजना में बाड़ी या तार बंदी प्रक्षेत्र प्रबंधन का प्रथम सैद्धांतिक एवं अनिवार्य आधार है।

2) संसाधनों के अनुरूप प्रक्षेत्र में खेजड़ी आधारित फसल उत्पादन प्रणालियां विकसित करना तथा खेती के लिए उपयुक्त व चयनित उत्पादन प्रणालियों में सब्जी फसलों की उन्नत किस्मों का उपयोग करना।

3) प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी में सार्थक सब्जी फसल उत्पादन एवं संसाधनों के समुचित उपयोग के लिए उन्नत व नवोन्वेषित तकनीकें जैसे खेत की समय पर तैयारियाँ, वर्षा जल संग्रहण, नमी संरक्षण तथा सिंचाई तरीकों पर विशेष व्यवस्थायेँ, संतुलित खाद व उर्वरकों का उपयोग, मृदा–उर्वरा संरक्षण व स्वास्थ्य हेतु उपयुक्त कृषि क्रियाएं तथा पलवार के लिए स्थानीय घास–फूस को प्राथमिकता से अपनाना।

4) फसल उत्पादन में समय पर विधिवत बुवाई, पौध संख्या निर्धारण, निराई–गुड़ाई व अन्तर–शस्य क्रियाएँ तथा उत्पाद प्रबन्धन को वैज्ञानिक ढंग से अपनाना, तथा

5) प्रतिकूल जलवायु के कारकों, जंगली जानवरों, पक्षियों तथा कीड़ों व बीमारियों से बचाव हेतु समेकित सब्जी फसल सुरक्षा प्रबन्धन को अपनाना।

## Qlyks ,oa fdLeks dk pquko

शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में सब्जी उत्पादन की व्यापक संभावनायें हैं लेकिन वातावरणीय रूकावटों के कारक, वर्षा की मात्रा एवं वितरण तथा सिंचाई जल की उपलब्धता इसे प्रभावित कर रही है। अनुसंधान के आधार पर इस जलवायु में लगभग 55 तरह के पेड़–पौधों से सब्जी उत्पादन किया जा सकता है जिनमें से 35 फसलों को व्यावसायिक खेती के लिए बढ़ावा दिया जा रहा है। यहाँ व्यावसायिक सब्जी उत्पादन के लिए जलवायु व संसाधनों के अनुरुप उन्नत किस्मों एवं इनके बीजों का अभाव है तथा फसलों के चयन में भी कठिनाइयाँ आती हैं। अल्पप्रचलित एवं बहुउपयोगी सब्जियों के स्थानीय जननद्रव्यों को सुधार कार्यक्रम के तहत शुद्धिकरण से उत्पादन के लिए उन्नत प्रजातियां विकसित की गयी हैं तथा इनकी उपयोगिता के लिए किसानों को जागरूक किया जा रहा है।

## ç{ks= fodkl rduhd

प्रक्षेत्र विकास की इस योजना से वातावरणीय रूकावटों के प्रभावों को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है तथा कृषि योग्य वातावरण बनने से फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में आवश्यक सुधार संभव हैं। संस्थान द्वारा विकसित खेजड़ी आधारित इस तकनीकी में संसाधनों के अनुरूप परम्परागत अथवा गैर–परम्परागत फसलों का समावेश व्यवस्थित प्रणालियों में कर सुनिश्चित उत्पादन किया जा सकता है। इसमें प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक मेहनत के बाद निरन्तर आय होती है।

जिन किसानों के पास 4–16 या 25 बीघा जमीन का एकल जोत है वे खेजड़ी आधारित सब्जी उत्पादन व्यवस्थायें विकसित कर सकते हैं। सर्वप्रथम चयनित भू–भाग की बाड़ या तार बंदी करना आवश्यक है जो कि इस योजना का पहला सैद्धांतिक आधार भी है। बाड़ बंदी से ही खेत में उचित कृषि–वातावरण तैयार करने वाले पेड़–पौधों को योजनाबद्ध ढंग से लगाया जाता है। इसके लिए चयनित

**rkfydk&1 'kq"d {ks=h; tyok;q esa ckxokuh fodkl ds fy, mi;Dr lCth Qly**

| oxZ | lCth Qlysa ÁkFkfedrk ds Øe ls => |
|---|---|
| बेल वाली सब्जियाँ | काचरी, फूट ककड़ी, मतीरा, टिण्डा, ककड़ी, लौकी, कुन्दरु, नसदार तुरई, चिकनी तुरई, खरबूजा, करेला, कद्दू, ककोड़ा |
| फल वाली सब्जियाँ | बैंगन, टमाटर, मिर्च |
| गोभी वर्गीय सब्जियाँ | पत्ता गोभी, गाँठ गोभी, फूल गोभी |
| फली वाली सब्जियाँ | ग्वारफली, सेमफली, कुम्बाफली, चवलाँफली, मोठफली, मटर, |
| पत्ती वाली सब्जियाँ | मेथी, पालक, धनिया, सुवा, चौलाई, बथुआ, |
| जड़ वाली सब्जियाँ | मूली, गाजर |
| कंद वाली सब्जियाँ | प्याज, लहसुन |
| बहुवर्षीय सब्जियाँ | सांगरी (खेजड़ी), सेहजन, ग्वारपाठा, कुमट, खींप, फोग, केर, लसोड़ा, स्थानीय मशरुम |

**rkfydk&2 'k"d {k=h; lfCt;k dh Áe[k Átkfr;k**

| QLky | Átkfr;k | QLky | Átkfr;k |
|---|---|---|---|
| काचरी | एएचके–119, एएचके–200 | कुंदरु | एएचआईजी–1 |
| फूटककड़ी | एएचएस–82, एएचएस–10 | बैंगन | सीआईएएच–1, सीआईएएच–22 |
| मतीरा | थार माणक, एएचडब्ल्यू–19, एएचडब्ल्यू–65 | सेमफली | थार कार्तिकी, थार माघी |
| ककड़ी | एएचसी–2, एएचसी–13 | ग्वारफली | थार भादवी |
| लौकी | थार समृद्धि | कुम्बाफली | थार माही |
| टिंडा | एएचआरएम–1, एएचआरएम–2 | खेजड़ी | थार शोभा |
| नसदार तुरई | एएचआरजी–1 | सेहजन | एएचएमओ–1 |
| चिकनी तुरई | एएचएसजी–4 | पालक | एएचएलपी–1 |

प्रक्षेत्र में से उचित आकार के इकाई खेतों का चुनाव किया जाता है, ताकि संसाधनों के अनुरूप सब्जी फसलों का चयन किया जा सके। प्रक्षेत्र विकास के लिए इसकी किस्म थार शोभा के पौधों को उत्पादन प्रारूपों में लगाया जाता है जिससे उचित कृषि वातावरण तैयार हो तथा मध्य में उगाई जाने वाली फसलों को अनुकूल लाभ मिले। इस क्षेत्र की जलवायु के अनुरुप सब्जी उत्पादन के लिए तीन प्रकार के संयोजनों वाली व्यवस्थायें व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त हैं जिनको इस प्रकार परिभाषित किया गया है:–

### ¼v½ tfod ipdVk mRiknu rduhd

इसमें पंचकूटा सब्जी की पांच स्थानीय फसलों का जैविक पद्धति एवं वर्षा आधारित उत्पादन के लिए खेजड़ी की किस्म थार शोभा का एकल बगीचा 4 x 4, 6 x 6, या 8 x 8 मीटर दूरी पर इकाई खेत (एक हेक्टेयर) में विकसित करना होता है तथा बगीचे की चारों दिशाओं में किनारों के चार मीटर की दूरी पर एकल अथवा जोड़े में लसोड़ा (दक्षिण), केर (पूर्व व पश्चिम) व कुमट (उत्तर) की पटिटकायें उत्पादन प्रारूप में तैयार की जाती हैं, एवं मध्य में काचरी की खेती की जाती है।

### ¼c½ vYiÁpfyr lCth mRiknu rduhd

वर्षा आधारित सब्जी उत्पादन की इस व्यवस्था में प्रति इकाई खेत (एक हेक्टेयर) में विकसित करने होते हैं तथा प्रक्षेत्र की चारों दिशाओं में किनारों पर चार मीटर की दूरी पर एकल अथवा जोड़े में बीजू पेड़–पौधों लसोड़ा व खेजड़ी (दक्षिण), केर (पूर्व व पश्चिम) तथा कुमट व बोरड़ी (उत्तर) की पटिटकायें तैयार की जाती हैं, एवं बगीचों में काचरी, फूटककड़ी, मतीरा, टिंडा या ग्वारफली की खेती की जाती है।

### ¼l½ 0;kolkf;d lCth mRiknu rduhd

इस व्यवस्था में खेजड़ी को 4 x 4 मीटर के जोड़ों में अधिकतम दूरी की पट्टिकाओं (24 या 48 मीटर के अंतराल) पर इकाई खेत (1–4 हेक्टेयर) के रूप में विकसित करने होते हैं। प्रक्षेत्र की चारों दिशाओं में किनारों पर चार मीटर की दूरी पर एकल अथवा जोड़े में बीजू पेड़–पौधों लसोड़ा व खेजड़ी (दक्षिण), केर (पूर्व व पश्चिम) तथा कुमट व बोरड़ी (उत्तर) की पट्टिकायें तैयार की जाती हैं। पटिटकाओं के मध्य में खेत तैयार कर नाली, बूंद–बूंद या फव्वारा पद्धति से सिंचाई करते हुए सब्जी फसल उत्पादन किया जाता है।

### [kr dh r;kjh

प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी में वर्षाऋतु की फसलों की बुवाई पूर्व तथा कटाई पश्चात् खेत की समय पर तैयारियां एवं कृषि क्रियाएं जिनमें गहरी जुताई, वर्षा जल संग्रहण व नमी संरक्षण प्रमुख हैं। मानसून आगमन की सूचना के साथ ही जून महीने में खेजड़ी के बगीचों या इनकी पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को तैयार कर गहरी जुताई कर लें तथा गोबर या भेड़–बकरी की मींगनी की खाद मिलाकर अंतिम सप्ताह में एक बार पुनः जुताई करें, इसके बाद पाटा

लगाकर खेत को फसल बुवाई के लिए तैयार रखें। प्रतिवर्ष जून की अंतिम जुताई के पहले गोबर की खाद तथा दीमक व भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिए मिथाइल पेराथियान (2 प्रतिशत) 25 किलोग्राम/ हेक्टेयर पाउडर का भुरकाव पाटा लगाने से पहले करना चाहिए। संस्थान में किये गये अध्ययन के निष्कर्षों में पाया गया है कि पहली जुताई जून महीने के दूसरे पखवाड़े में तथा फसल उत्पादन के लिए वर्णित तकनीकी से तैयार खेत में वर्षा जल अधिक संग्रहित व संरक्षित रहता है एवं खरपतवार भी कम उगते हैं। इसी तरह वर्षाकालीन फसलों की कटाई पश्चात् नवम्बर–दिसम्बर में जुताई से इनके अवशेष व खरपतवार भूमि में मिल जाते हैं तथा सर्दियों में होने वाली वर्षा (मावठ) का जल भी खेत में अधिक संचित होता है। ग्रीष्मकालीन बुवाई के लिए खेतों को जनवरी–फरवरी में दो बार हैरो से जुताई पश्चात पाटा लगाकर तैयार करना चाहिए। इस तरह तैयार खेतों में क्यारी, कुण्ड, नाली या बूंद–बूंद विधि अपनाकर सब्जी फसलों का उत्पादन करना लाभप्रद रहता है।

## [kkn&moZjd Áca/ku

मरुस्थलीय रेतीली मिटटी वाले खेतों में सब्जी फसल उत्पादन के लिए लगातार खाद व उर्वरकों का नियंत्रित उपयोग करना अनिवार्य है। यह मृदा की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। खेतों में अच्छी जीवांश के लिए प्रतिवर्ष गोबर की खाद (200–250 क्विंटल/हेक्टेयर) या 5–6 ट्रेक्टर–ट्रॉली भेड़–बकरी की मींगनी खाद दें। इसी तरह जून की अंतिम जुताई के समय यदि मानसून पूर्व की वर्षा हो तो हरी खाद के लिए ढेंचा के बीजों (20–25 किलोग्राम/हेक्टेयर) का छिटकाव करें। शुष्क क्षेत्रीय सब्जी फसलों की व्यवस्थित खेती के लिए रासायनिक खाद में 80–100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40–50 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना आवश्यक है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा क्यारियाँ अथवा नालियाँ बनाने से पहले ही दें। संस्थान ने फसल उत्पादन एवं प्रबंधन तकनीकी से नाली अथवा बूंद–बूंद प्रणाली अपनाते हुए सब्जियों की खेती के लिए खाद व उर्वरकों के उपयोग की एक समेकित व्यवस्था विकसित की है।

इस तकनीकी के अंतर्गत तैयार खेत में रेखांकन कर नालियां अथवा गहरे कुंड बनाने से पहले देशी खाद (50 क्विंटल), वर्मीकम्पोस्ट (5 क्विंटल), डाईअमोनियम फास्फेट (100 किलोग्राम), सिंगल सुपर फास्फेट (100 किलोग्राम), यूरिया (50 किलोग्राम), म्यूरेट आफ पोटाश (50 किलोग्राम) तथा मिथाइल पेराथियोन (10 किलोग्राम) प्रति हेक्टेयर की दर के मिश्रण को व्यवस्थित रूप से 60 सेंटीमीटर चौड़ाई क्षेत्र व कतारों में बिखराव किया जाता है।

नाइट्रोजन की आधी मात्रा को यूरिया (50–60 किलोग्राम/हेक्टेयर) के रूप में तीन भागों में बाँट कर पहला भाग, फसल बुवाई/रोपाई के 18–25 दिनों बाद, दूसरा 30–35 दिनों पर जब पौधों में फैलाव एवं फूलों का आना प्रारम्भ हो तथा अंतिम भाग 45–50 दिनों पर जब फल जमाव प्रारम्भ हो, उस समय देना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। वर्षा आधारित खेती में यूरिया का भुरकाव करते समय ध्यान रखें कि खेत में पर्याप्त नमी हो अथवा सिंचाई के तुरन्त पश्चात् ही इसका उपयोग करें। बारानी फसलों में नाइट्रोजन के लिए यूरिया का 2 प्रतिशत घोल का (20 ग्राम/लीटर पानी) 300–500 लीटर/हेक्टेयर छिड़काव करना लाभदायक है। बूंद–बूंद प्रणाली में यूरिया का उपयोग 4–6 भागों में विभक्त कर 10–12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई के साथ करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है।

## Qly cokbZ rduhd

व्यवस्थित खेती के लिए क्षेत्रीय जलवायु एवं सिंचाई संसाधनों के अनुरूप सब्जियों का चुनाव मुख्यतः वर्षा, शीत व ग्रीष्मकालीन फसलों के रूप में करें। वर्षा आधारित व चयनित फसलों की खेती के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के अंत तक, जब भी अच्छी वर्षा का दौर हो उसी समय बुवाई कर देनी चाहिए। सिंचाई व्यवस्था होने पर उपयुक्त उत्पादन तकनीक (बूँद–बूँद, फव्वारा या नाली विधि) अपनाकर चयनित फसलों की सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है।

क्षेत्र की जलवायु को एक उपयोगी संसाधन के रूप में अपनाते हुए प्रमुख सब्जियाँ जैसे काचरी, फूटककड़ी,

मतीरा, टिंडा, लौकी, ककड़ी, ग्वारफली व बैंगन की नियमित अंतराल पर मध्य जनवरी से मार्च तथा जून–जुलाई में योजनाबद्ध बुवाई करें। सीमित सिंचाई जल एवं उत्पादन प्रबन्धन तकनीक द्वारा अप्रैल से दिसम्बर तक बाजार में इनकी उपलब्धता बनायी जा सकती है। यहाँ दिसम्बर–जनवरी में अत्यधिक सर्दी (4 डिसे से कम) व पाले की स्थिति तथा मई से जुलाई तक प्रचण्ड गर्मी का प्रकोप होता है। इन विषम परिस्थितियों में स्थानीय संसाधनों व कम लागत से पॉलीथीन या छायादार जालीनुमा चादर बनाये संरक्षित गृहों में चयनित फसलों की नर्सरी–पौध तैयार कर, इनकी अगेती फसल के लिए जनवरी के तीसरे सप्ताह अथवा जुलाई में रोपाई की जा सकती है।

सब्जियों के उन्नत व प्रमाणित बीजों का चुनाव करें तथा बुवाई के लिए स्वस्थ व अच्छी अंकुरण क्षमता युक्त बीजों को ही उपयोग में लें। काचरी, फूटककड़ी, ककड़ी व खरबूजा में (1.0–1.5), टिंडा, मतीरा, लौकी व तुरई में (2.0–2.5) तथा ग्वार व सेमफली में (12–15) बीज की मात्रा (किलोग्राम/हेक्टेयर), पर्याप्त है। बीजों को बुवाई से पहले 4–6 घंटो तक पानी में डुबाकर रखें अथवा गर्म पानी में नमक (20 ग्राम/लीटर) के साथ डुबोते हैं, जब हल्के व थोथे बीज पानी की सतह पर आ जाए तब उनको अलग कर देवें। इसके पश्चात् तले में बैठे बीजों को अलग कर टाट की गीली पोटली में बाँध लेवें। इस तैयार पोटली को रात भर गोबर की खाद के ढेर में या गड्ढा बना कर जमीन में गाड़ दें। इसी प्रकार तैयार बीजों को बुवाई से तुरंत पहले कैप्टान, थाइरम या बैवेस्टिन (2–3 ग्राम दवा/किलोग्राम की दर) से उपचारित करना आवश्यक है। कीट व बीमारियों के प्रकोप को रोकने के लिए बीजों अथवा नर्सरी पौधों को इमिडाक्लोरोपिड एवं ट्राईकोडर्मा से भी उपचारित किया जाता है।

बुवाई की विधियाँ मुख्यतः जल प्रबंधन तथा उत्पादन प्रणालियों पर केन्द्रीत हैं। वर्षा आधारित सब्जी फसलों की बुवाई मिश्रित अथवा एकल पद्धति से की जा सकती है। सिंचित फसल उत्पादन में क्यारी, नाली अथवा कुंड विधि में सिंचाई बहाव, फव्वारा या बूंद–बूंद पद्धति से की जा सकती है। सीमित वर्षा एवं डिग्गी आधारित जल बचत खेती के लिए संस्थान द्वारा फसल बुवाई की विधियाँ विकसित की हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है:–

**¼v½ ukyh fof/k ½** अनुसंधान के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से बेलवाली सब्जियों की खेती के लिए नाली विधि सर्वोतम है। इस विधि में पाटा लगा कर तैयार किए खेत में 1.5–2.5 मीटर दूरी पर 50–60 सेमी. चौड़ी हल्की–गहरी नालियाँ बनाई जाती हैं। मुख्य नाली के दोनों ओर फसल के लिए नालियों की लम्बाई 25–30 मीटर तक ही सीमित रखनी चाहिए। इन्हें पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बनावें। रेखांकन कर बनाई गई इन नालियों में खाद व उर्वरकों को अच्छी तरह से मिलाकर बुवाई के लिए तैयार करें। नालियों के अंदर की उतरी ढलान पर 50–50 सेमी. दूरी के प्रत्येक स्थान पर 2–3 बीजों की बुवाई करें। अंकुरण पश्चात् जब पौधों में 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाती हैं अथवा 18–21 दिनों के हो जाएं एक या दो स्वस्थ पौधे रखकर शेष को निकाल दें। पौधे जब 30–35 दिनों के होने लगें तब उनको नालियों से बाहर बेल फैलने वाली जगह की ओर मोड़ दें और इनके आस–पास की जगहों पर स्थानीय घास–फूस से पलवार करें। इसी तरह बैंगन, टमाटर, मिर्च व गोभी फसलों की नाली विधि (60–75 सेमी.) से ही व्यवस्थित खेती करना उपयुक्त रहता है।

नाली विधि में पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में देखभाल एवं निराई–गुड़ाई कार्य सहजता से किये जा सकते हैं। वर्षा दिनों में नालियों एवं इसके आस–पास के ढलान क्षेत्र में जल अधिक मात्रा में संग्रहित होता है जो फसल के लिए उपयोगी है। इस विधि से खेती करने पर खाद–उर्वरक व सिंचाई जल इन्हीं नालियों में ही दिया जाता है जिससे इनकी अधिक मात्रा में बचत होती है।

**¼c½ d.M fof/k ½** असमतल व टिब्बों वाले खेतों में वर्षा आधारित खेती के लिए कुण्ड विधि से बुवाई करना उपयुक्त रहता है। बेलवाली सब्जियों की एकल फसल के लिये तैयार खेत में 2–2 मीटर की दूरी के अंतराल पर देशी हल से गहरे कुण्ड बनाते हुए इनमें

उर्वरकों के साथ–साथ बीज बुवाई की जाती है। इन कुण्डों में 50–50 सेमी. के अंतराल पर 3–4 बीजों की बुवाई करें। अंकुरण पश्चात् जब 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाती हैं तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे ही रखें। इसी समय निराई–गुड़ाई एवं अंतराशस्य क्रियाएं करें। इसके बाद कुंडों को हल्की नालियों जैसा स्वरूप दे देना चाहिए। यदि फव्वारा पद्धति से सिंचाई की व्यवस्था हो तो सुनिश्चित उत्पादन के लिए 1 या 2 जीवनदायी सिंचाई की जा सकती है।

**¼l½ fefJr Qly ½** वर्षा आधारित मिश्रित खेती में सब्जी फसलों को छिटकाँव विधि से बोया जाता है। इस प्रकार बुवाई करने से पौधे अव्यवस्थित उगते हैं जिनकी न तो सही ढंग से संभाल हो सकती है और न ही उन्नत क्रियाओं को अपनाया जा सकता है। मिश्रित फसल में भी बेलवाली सब्जियों की कतारों एवं कुण्ड विधि अपनाकर सहजतापूर्वक खेती की जा सकती है। इसमें 5–6 मीटर के अंतराल पर हल से कुण्ड बना कर बुवाई की जाती है। अंकुरण पश्चात् जब 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाए तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे ही रखते हुए आवश्यक अंतरासस्य क्रियाएं करें। बुवाई की इस तकनीकी से फसलें व्यवस्थित होती हैं तथा इनमें फसल क्रियाएं एवं फल तुड़ाई सरलता से की जा सकती हैं।

## flapkbZ ty Áca/ku

फसल उत्पादन तकनीकों का विकास करते समय जल संरक्षण, स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग, लागत, उपज एवं स्थिरता आदि बातों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

सब्जी फसलों की नाली विधि से उत्पादन एवं सिंचाई प्रबंधन द्वारा एक तिहाई जल (33 प्रतिशत) की बचत होती है। क्यारी विधि में जहाँ पूरे फसल क्षेत्र को सिंचित किया जाता है वहीं नाली विधि में पौधों की सिंचाई इन्हीं नालियों में ही की जाती है तथा बेल फैलने वाला लगभग दो तिहाई क्षेत्र असिंचित रखा जाता है। प्रायः किसान क्यारी या कुंड विधि से बेलवाली फसलों की बुवाई कर फव्वारा पद्धति से पूरे क्षेत्र में सिंचाई करते हैं जिससे अधिक जल एवं संसाधनों की आवश्यकता होती है। पूरे फसल क्षेत्र में सिंचाई करने से खरपतवार अधिक पनपते हैं तथा खेत में लगातार नमी बनी रहने से फल खराब हो जाते हैं।

सब्जी फसलों में सिंचाई के लिए नाली विधि सर्वोत्तम एवं सरल है। नाली विधि में एक ओर जहाँ सिंचाई जल की भारी बचत होती है, वहीं दूसरी ओर बरसात के दिन यह नालियाँ जल संग्रहण का कार्य भी करती हैं। इस विधि से सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि पानी बेल फैलने वाले क्षेत्र में नहीं बहे। शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई जल की पर्याप्त सुविधा है, वहाँ ग्रीष्मकालीन सब्जियों की सफल खेती समतल खेतों में नाली विधि से की जा सकती है। इस विधि में पौधों की प्रारम्भिक अवस्था से फल जमाव होने तक 6–7 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। कई बार फसल पकने के समय भीषण गर्मी एवं धूल भरी आंधियों का प्रकोप हो जाता है, ऐसी स्थिति में फसल सुरक्षा के लिए समय पर सिंचाई प्रबन्धन अत्यंत जरूरी है।

सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था में बूंद–बूंद पद्धति सब्जियों फसलों के लिए अच्छी है। इसमें जल बचत के साथ ही फसल में अच्छी वृद्धि होने से विपणन योग्य फलों में भी बढ़ोतरी होती है। बूंद–बूंद तकनीकी से सब्जी फसलों के लिए 14–16 मिलीलीटर व्यास की एकल पाइप लाइनें (लेटर्ल्स, 14–16 एमएम) जिन पर 50–50 सेमी. अन्तराल पर चार लीटर प्रति घंटा पानी छोड़ने वाले इन–लाइन ड्रीपर्स सर्वाधिक उपयुक्त रहते हैं। खेत में रेखांकन कर 2–2 मीटर अंतराल पर एकल पाइपों (लेटर्ल्स) को बिछाकर मध्य में बिछी 50–75 मिलीमीटर व्यास की पानी आपूर्ति पाइप लाइनों से जोड़ा जाता है। लेट्रल पाइपों की एक तरफा लम्बाई 25 मीटर तक ही सीमित रखनी चाहिए तथा इनको पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बिछावें।

पाटा लगाने के पश्चात् तैयार खेत में जिन जगहों पर लेट्रल पाइपों के मुहाने आ रहे हैं उन्हीं के आस–पास 50–60 सेमी. चौड़ाई की हल्की–गहरी नालियाँ या गहरे कुण्ड बनाये जाते हैं तथा इनमें खाद एवं उर्वरकों का

मिश्रण अच्छी तरह से मिलाकर इनको पुनः नाली स्वरूप दे दिया जाता है। प्रारम्भिक हल्की सिंचाई कर प्रत्येक इन–लाइन ड्रिपर वाले स्थान के आस–पास बीजों की बुवाई करें। सब्जी फसलों में बूंद–बूंद तकनीकी से 2–3 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं उत्पादकता के लिए प्रारम्भिक अवस्था में 1.0–1.5 घंटा तथा फलन के समय 1.5–2.0 घंटा सिंचाई करनी चाहिए।

## Qly lqj{kk ÁcU/ku

फसलों में जैविक व अजैविक कारकों से कम से कम नुकसान रखना ही उत्पादन में वृद्धि करने की एक उत्तम विधि हो सकती है। फसलों को हानि पहुँचाने वाले विभिन्न प्रकार के कीटों एवं बीमारियों के अलावा वातावरण में अचानक परिवर्तन से पैदा होने वाली परिस्थितियाँ भी हैं जो इनकी वानस्पतिक वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। अतः फसल प्रबन्धन में ऐसी व्यवस्थायें हों जिसमें सुरक्षा की मिली–जुली प्रणालियाँ अपनायी जा सकें जिससे संतुलित व सुरक्षित बचाव एवं समय पर नियंत्रण किया जा सके।

प्रक्षेत्र चयन एवं विकास के साथ समय–समय पर खेतों की साफ–सफाई एवं इनके आस–पास के खेतों की भी सफाई, बुवाई पूर्व तथा कटाई पश्चात् गहरी जुताई, खेत व आस–पास से इकट्ठा किया गया रोग ग्रस्त व अन्य कचरे को नष्ट करना, फसल चक्र अपनाना, मौसम आधारित कृषि सूचनाओं का लेखा–जोखा रखना एवं इनका उपयोग, आदि प्रमुख हैं। व्यावसायिक स्तर पर सब्जियों की योजनाबद्ध एक के बाद एक मौसमी फसलें पैदा की जाती है वहाँ मात्र कृषि एवं जैविक क्रियाओं से कीड़ों व बीमारियों का प्रबन्धन नहीं किया जा सकता है, अतः नियंत्रित एवं निर्धारित रासायनिक दवाओं का सुरक्षित उपयोग सम्भावित प्रकोप की आशंका को ध्यान में रखकर फसलों की अवस्थाओं के अनुरूप किया जाना चाहिए।

सब्जी फसलों के प्रारंभिक दिनों में जंगली छिपकली, गिलहरी व पक्षियों से अधिक नुकसान होता है। नुकसान होने पर प्रारंभिक अवस्था तक पुनः बुवाई करना भी उचित रहता है। नवांकुरों की 2–4 वास्तविक पत्तियां अथवा प्रारंभिक अवस्था में लाल व ऐपीलेकना भृंग एवं रस चूसने (तेला, चेपा, मोयला व सफेद मक्खी) वाले कीटों के प्रकोप की आशंका बनी रहती है। इनके नियंत्रण के लिए एक किलोग्राम मिथाइल पेराथियान (2 प्रतिशत) चूर्ण को 10 किलोग्राम राख के साथ तैयार मिश्रण को टाट की थैली में भरकर प्रातःकाल पौधों पर भुरकाव करें।

समेकित कीट नियंत्रण के लिए बुवाई पश्चात् के 18–25, 30–35 एवं 45–50 दिनों बाद के क्रम में इमिडाक्लोरोपिड (0.3 मि.ली.), मिथाइल डिमेटोन (1.5 मि.ली.) एवं डाईमिथोऐट (1.5 मि.ली.) दवा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल का छिड़काव करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। सब्जियों में फलन पश्चात् के कुछ प्रमुख कीड़ों को नियंत्रित रखने के लिए मेलाथियान (2 मि.ली.) का छिड़काव किया जा सकता है तथा यह कार्य फलों की तुड़ाई पश्चात् ही किया जाना चाहिए। बीमारियों का प्रारंभिक व प्रभावी नियंत्रण के लिए बेवेस्टिन (1.5 ग्रा.) तथा मेन्कोजेब (2–3 ग्रा.) दवा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल का छिड़काव क्रमशः 30–35 एवं 50–55 दिनों की फसल अवस्था में बचाव के लिए उपयुक्त रहता है।

---

दिलीप कुमार समादिया
*प्रधान वैज्ञानिक*
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

# 'k"d {k= e Qy vk/kkfjr [krh ,d lexfr'khy ifjdYiuk

कृषि, शुष्क क्षेत्रों में ग्रामीण जनमानस के जीवन–यापन का मुख्य स्त्रोत है। परन्तु बदलती वातवरणीय परिस्थितियों के कारण बहुधा अकाल एवं सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे व्यापक रूप से आर्थिक हानि भी होती है। इसके अतिरिक्त शुष्क क्षेत्रों की मृदा एवं जलवायवीय परिस्थितियों जैसे कम और असामान्य वर्षा, न्यून एवं अधिकतम तापमान, अधिक वातावरणीय वाष्पोत्सर्जन दर, कम पानी की उपलब्धता एवं लवणीय तथा अनुपजाऊ भूमि इत्यादि समगतिशील कृषि के विकास में बाधक है। बहुधा, जाड़ों में तापमान शून्य से भी नीचे गिर जाता है तथा पाले से फसलों की व्यापक बर्बादी होती है। ऐसी परिस्थिति में किसी एक प्रकार की फसल चाहे वो मौसमी फसल हो अथवा चारे वाली फसल हो, को लेना अहितकर है। ऐसी स्थिति में फसल प्रणाली को अपनाना शुष्क क्षेत्रों के लिए वरदायी सिद्ध हो सकता है। फल आधारित कृषि प्रणाली को आज सबसे आदर्श फसल प्रणाली के रूप में लिया जाता है क्योंकि इसके द्वारा न केवल विषम परिस्थितियों में पूर्ण रूप से होने वाले आर्थिक हानि को कम किया जा सकता है बल्कि यह भोज्य, पदार्थ, पोषण और आप सुरक्षा को प्राप्त करने का एक मुख्य मार्ग है।

फसल प्रणाली में वार्षिक फसलों के साथ बहुवर्षीय फसलों के एकीकरण द्वारा उत्पादन एवं आय को कई गुना किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था द्वारा प्राकृतिक संसाधन (यथा जल, भूमि, सूर्य का प्रकाश एवं मृदा) तथा सामाजिक–आर्थिक संसाधन (यथा श्रम, शक्ति, उधार, विपणन व्यवस्था) दोनों का ही समुचित रूप से उपयोग होता है। पेड़ों के नीचे उगने के कारण तथा उनकी पत्तियों के मृदा में मिलने से वार्षिक फसलों के उत्पादन में प्रायः वृद्धि देखी गयी है। साथ ही पेड़ों के नीचे के क्षेत्र में तापमान अधिकता को भी काफी हद तक कम किया जा सकता है।

वृक्ष अथवा फसल यदि लेग्युमिनेसी कुल का हो तो उसके जड़ों द्वारा भी मृदा में नत्रजन का स्थिरिकरण होगा, जिससे उर्वरकों पर होने वाले व्यय को भी कम किया जा सकता है। फल वृक्षों को फसल उत्पादन प्रणाली में लाने से न केवल आय एवं उत्पादन में वृद्धि होती है अपितु परिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में भी सहयोग मिलता है। फल वृक्षों अथवा बहुवर्षीय वृक्षों को फसल प्रणाली में अपनाने से हाने वाले लाभ अधोलिखित हैं:–

- वायवीय स्थान का अधिकतम उपयोग।
- कई फल वृक्ष मिलकर उत्पादन बढ़ाने में सक्षम।
- प्रति क्षेत्रफल अधिकतम आय फलों द्वारा ही संभव।
- फल अपनी पत्तियां गिराकर मृदा को उपजाऊ बनाती है।
- पोषण सुरक्षा की प्राप्ति।

फसल उत्पादन की परिकल्पना को विभिन्न तरहों से परिभाषित किया गया है, परन्तु सामान्य अर्थो में यह एक ऐसी खेती पद्धति है जिससे सूर्य के प्रकाश, मृदा एवं अन्य स्त्रोतों का अधिकतक उपयोग होता है,

इसके तीन मुख्य अंग है,

1. मुख्य फसल
2. सहभागी फसल
3. अन्तः सस्य फसल

इनका मुख्य उदाहरण कुछ इस प्रकार है:

- मुख्य फसलः बेर
- सहभागी फसलः आंवला, करौंदा, किन्नौ, बेल, सहजन, खेजड़ी
- अन्तःसस्य फसलः सेवन घास, अजवायन, सौंफ, सरसों, गुआर, चना, मोठ, धनिया
- खेती प्रणालीः विभिन्न फसलों का उचित सम्मिश्रण।

विभिन्न फसलों के उचित समायोजन के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित है।

- बेर–आंवला–गुआर–चना/बीजीय मसाला
- बेल–आंवला–करौंदा–गुआर–चना/सरसों/ बीजीय मसाला
- खेजड़ी–आवंला–गुआर–चना/सरसों/बीजीय मसाला
- सहजन–आवंला–गुआर/मोठ–चना/बीजीय मसाला
- बेर/बेल/सहजन/खेजड़ी/किन्नों–आंवला– सेवन घास

शुष्क क्षेत्र की जलवायुवीय एवं पारिस्थितिकीय तंत्र को ध्यान में रखते हुए, फल आधारित कृषि पद्धति को अपनाना आज के समय की मांग एवं आवश्यकता है।

---

हरे कृष्ण[1], सुशील कुमार माहेश्वरी[2], रमाशंकर सिंह[3] एवं नितेश चौहान[4]

*[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक (बागवानी), [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक (पादप), [3]प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी), [4]एस आर एफ*

*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

Qy vk/kkfjr Qly i)fr esa fofHkUu cgqo"khZ; Qy o`{k

# ckjkuh {k=k e & cy dh ckxokuh

बेल पोषकतत्वों और औषधीय गुणों से भरपुर भारत के प्राचिन फलों में से एक है। बेल के गुणों का वर्णन यजुर्वेद, जैन साहित्य, उपवन विनोद, चरक संहिता और बृहत संहिता में विस्तृत रूप से मिलता है। बेल के पंचाग (जड, छाल, पत्ते, शाख एवं फल) औषधी के रूप में बहुत उपयोगी है। उत्तर भारत में बेल के फल का उपयोग गरमी के महीनों में बहुतायत से किया जाता है। बेल की विपरीत परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता, पोषक तत्वों तथा औषधीय गुणों से भरपूर, विभिन्न प्रकार की खाद्य परिरक्षित पदार्थो के रूप में उपयोगिता तथा अधिक समय तक भण्डारण क्षमता प्रति इकाई उच्च उत्पादकता तथा भारतीय जनता की औषधीय फलों के प्रति जागरूकता बेल को आने वाले समय में एक महत्त्वपुर्ण फल साबित हो सकता है। अतः इसकी बागवानी को बढावा देने की आवश्यकता है।

अर्धशुष्क वर्षा आधारित क्षेत्रों में बेल की बारानी खेती को सफलता पूर्वक करने के लिए आवश्वयक बातों की जानकारी प्रस्तुत आलेख में दी जा रही हैः–

## Hkfe

बेल अत्याधिक सहनशील वृक्ष होने से किसी भी प्रकार की भूमि एवं जलवायु में उगाया जा सकता है। परंतु उपयुक्त जल निकास होने के कारण बुलई दोमट भूमि इसके लिए अधिक उपयुक्त होती है। ऊसर, बंजर कंकरीली, खादर एवं बीहड भूमि में भी इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है। बेल की खेती के लिए 6–8 पी.एच मान वाली भूमि अधिक उपयुक्त होती है। ऐसी भूमि जिसमें विनमयशील सोडियम (20–30 प्रतिशत) क्षारीयता (पी.एच) मान 9 तथा विद्युत चालकता 6 डे. सा. प्रति मीटर तक हो, में बेल की व्यावसायिक खेती की जा सकती है।

## t yok;

यह एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है पर उष्ण जलवायु में भी इसको सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बेल की बागवानी समुद्र तल से 1200–1600 मीटर उँचाई तक और 7–46$^0$ से. तापमान तक सफलतापूर्वक हो सकती है। बेल के ज्यादातर पेडों में कांटे पाये जाते हैं। गर्मी (अप्रैल) के समय में पत्तीया गिर जाती हैं। पौधों में शुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। जिस भूमि में पानी इकठ्ठा होता है वहाँ पर इसकी खेती में समस्या आती है।

## fdLe

कृषि विश्वविद्यालयों एवं भा.कृ.अनु.प. के अनुसंधान संस्थानों ने बेल की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे– एन.बी–5, एनबी–7, एनबी–9, एनबी–16, एनबी–17, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत अपर्णा, पंत सुजाता, सी.आई.एस.एच.–बेल–1, सी.आई.एस.एच.–बेल –2 और गोमायशी, थार दिव्या) विकसित की हैं। बेल में अत्यधिक जैव विविधता पाई जाती है।

## ço/ku

अच्छे मूलवृंत प्राप्ति के लिए बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज से तैयार किये जाते हैं। बेल की खेती हेतु पौधों को चश्मा (पैच) विधि से तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न पध्दतियों में पैबन्दी चश्मा विधि (पैच) द्वारा मई–जून में पौधे तैयार करने से 80–90 प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है। पॉली एवं नेट हाउस की सहायता से कोमल शाख बंधन तकनीकी द्वारा बेल का प्रर्वधन साल के अन्य महिनों में भी किया जा सकता है। अर्ध–शुष्क क्षेत्र में बेल का प्रसारण अन्य महीनों में किया जा सकता है। स्वस्थाने पैच कलिकायन मई –जून में करने से 95 प्रतिशत से अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। मई में

कलिकायन करने से 8–12 दिन के अन्दर कलिका में वृद्धि होना शुरू हो जाती है।

Qyk ls ynk cy dk ikS/kk

## xïs dh rS;kjh ,oa ikS/k jksi.k

पौधे लगाने के पहले एक माह पूर्व 6–8 मीटर के अंतर पर 75 से 100 घन सेमी. के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। ऐसे गड्ढों को 20–30 दिनों तक खुला छोड़ कर 3–4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद ऊपरी मिट्टी में डालकर मिलाना चाहिए। पौध रोपण जुलाई–अगस्त माह में करनी चाहिए। यदि क्षार की मात्रा अधिक हो तो 100–200 ग्राम जिप्सम तथा दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपाइरीफास की डन्चिंग करना चाहिए।

## iyokj ¼efYpx½

बारानी खेती के लिए जैविक पलवार पौधे के तने पेड़ की चारों तरफ 4 वर्ग मीटर में 20 सेमी. मोटी पलवार वर्षा के बाद (अक्टुबर) में करने से बेसीन की मिट्टी में केचुआं और सुक्ष्मजीवों की मात्रा बढ जाती है तथा भूमि की नमी बरकरार रहती है तथा तापमान भी कम रहता है। भूमि के भौतिक तथा रासायनिक गुणों में सुधार हो सकता है।

## [kkn ,oa moZjd dk ç;ksx

पौधों को निश्चित रूप से 5 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद 50 ग्राम नत्रजन, 25 ग्राम फॅास्फोरस एवं 50 ग्राम पोटास की मात्रा को प्रतिवर्ष डालने से अच्छी बढवार एवं फलन होता है। इस मात्रा को 10 वर्षों तक गुणित अनुपात में बढ़ाते रहना चाहिए।

## flapkbZ

बेल के नये पौधों को स्थापित करने के बाद 1–2 साल तक सिंचाई की आवश्यकता रहती है। गर्मी के महीनों में बेल का पेड़ पत्तियां गिरा देता है और सुसुप्त अवस्था में चला जाता है। मई–जून तक नई पत्तियां तथा फूल आना शुरू हो जाते हैं। फूल आने के समय सिंचाई नहीं करना चाहिए इससे उत्पादन पर प्रतिकूल असर पडता है।

## ikS/kksa dh l/kkbZ&NaVkbZ

पौधों की सधाई, सुधरी प्ररोह विधि से करना उत्तम होता है। सधाई का कार्य शुरू के 2–4 वर्षो में ही करना चाहिए। मुख्य तने को 75 सेमी तक अकेला रखना चाहिए। बाद में 4–6 मुख्य शाखाओं को चारों दिशाओं में बढ़ने देना चाहिए। बेल के पौधों में आवश्यकतानुसार सधाई–छटाई करने से उत्पादन तथा फलों की गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

cy ds ifjiDo Qy

## vUrjk Qly

वर्षा आधारित बागवानी में कद्दुवर्गीय सब्जियों जैसे– लौकी, कद्दु, करेला, खीरा, भिन्डी, ग्वारफली, इत्यादि भी की जा सकती है। उगाकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अंतः फसलें मुख्य फसलों को प्रभावित न करें उसके लिए जिसमें पानी की आवश्यकता कम हो एसी फसलें लगानी चाहिए तथा इन फसलों का मुख्य फसल पर प्रभाव नही पड़ता हो एसी फसलों का चुनाव करना चाहिए।

## l?ku ckxokuh

बेल की सघन बागवानी खास करके गोमायशी को 5 x 5 मी. पर लगाकर ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वृक्ष के आच्छादन को प्रबंधन करके फल की उत्पादकता, तथा फल की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है ।

## jksx ,oa dhV

बेल में सामान्यतः रोग और कीट बहुत कम नुकसान पहुंचा पाते हैं। इसमें बेल कैंकर, आन्तरिक विगलन, पत्तियों पर काला धब्बा और फलों का गिरना सामान्यतः पाया जाता है। इनके नियंत्रण के लिए उचित दवाई का छिंड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए। कीट में सामान्यतः पर्णभक्षी थोड़ा हानि पहुँचाती है। इन कीटों की रोकथाम हेतु रोगर (0–5 प्रतिशत) या थायोडॉन (0–7 प्रतिशत) का छिड़काव सप्ताह में एक बार करना चाहिए।

## Qyksa dh rqM+kbZ

बेल के फल फरवरी माह के अंत से तोड़ने योग्य हो जाते हैं। जब फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदल कर पीला हरा होने लगे तब डण्ठल के साथ फलों को तोड़ना चाहिए।

## mit

बीजू पेड़ों में 7–8 वर्ष बाद फलन प्रारंभ होता है। कलमी पौधों में 2–3 वर्षो में फलन आ जाता है। फलों की संख्या पौधे की बढ़वार के अनुसार बढ़ती जाती है। अर्ध शुष्क क्षेत्र में (09–10 वर्ष) के पौधे से 80–150 किग्रा. तक फल प्राप्त किये जा सकते हैं। वैज्ञानिक परीक्षण और मुल्यांकन से यह निष्कर्ष निकला है कि बारानी (वर्षा आधारित) अर्ध शुष्क क्षेत्रों में बेल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

अरविंद कुमार सिंह[1] एवं संजय सिंह[2]
*[1]प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी), [2]अध्यक्ष,*
*केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र*
*(भाकृअनुप–केशुबासं, बीकानेर),*
*वेजलपुर (गोधरा–गुजरात)*

csy dk cxhpk vkSj bulsV esa csy ds Qy

# *xkek çrhd* if'peh Hkkjr d fy, beyh dh mUur fdLe

इमली फैबेसी (टेमेरिंडस) कुल का पौधा है जो भारतवर्ष में विभिन्न नामों से जाना जाता है तथा इसके बीजू वृक्ष सड़क किनारे सरलता से देखे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में खटाई के लिए इमली का प्रयोग वृहद् स्तर पर किया जाता है। बच्चों को इसके बीज बड़े अच्छे लगते हैं। इमली के नियमित प्रयोग से फ्लोराइड युक्त पानी से होने वाले रोगों से भी बचा जा सकता है। इसे विभिन्न स्थानों पर विशेष तौर से भोजन में सम्मिलित किया जाता है। वर्ष 2009 के दौरान इस संस्थान द्वारा गोमा प्रतीक प्रजाति विकसीत की गयी थी। यह प्रजाति मध्यम कद, छोटा, घेराव लिए घनी पत्तियाँ, लटकती हुई शाखाएँ, शीघ्र फल देनेवाली और वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में सघन बागवानी के लिए उपयुक्त पाई गई है।

इमली की गोमा प्रतीक किस्म की वैज्ञानिक खेती और उससे अधिक उपज के लिए किए जाने वाले कार्यों का वर्णन यहां किया गया है:–

## Hkwfe

यह पेड़ अच्छे पानी निकास वाली, गहरी, बुलट, दोमई भूमि में अच्छी तरह से विकसित होता है। यह पौधा खराब और अनुपजाऊ जमीन में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। क्षारीय एवं खादर भूमि में भी सफलता पूर्वक उगा सकते हैं। लवणीय भूमि में भी जिप्सम और पायराईट डाले बिना भी इसे उगाया जा सकता है।

## tyok;q

यह प्रजाति भारत के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए के लिए योग्य पाई गई है। इस प्रजाति को 500–700 मि.मी वर्षा की आवश्यकता होती है। नये विकसित पौधों को पाले से बचाना चाहिए।

## ikS/k o`f)

इसका 10–12 साल का पौधा 4.5–5 मीटर की उँचाई लिए होता है। शाखाएँ मोटी, चौड़ी और घना घेराव लिए होती हैं। शुष्क क्षेत्रों में पत्तियाँ गर्मी में गिर जाती हैं और पुनः उसमें नये पत्ते आते हैं।

## ço/ku

**eyo`r dk fodkl %** अच्छे मूलवृंत की तैयारी के लिए सड़ी हुई खाद और मिट्टी (2:1) से भरी हुई पोलिथीन थैलियों में बीज बोना चाहिए। 8–10 माह के पेन्सिल जितनी मोटाई वाले तने को मूलवृंत के रूप में उपयोग में लेने से सफलता अच्छी मिलती है।

**iScnh p'ek fof/k %** पैबंदी चश्मा विधि से जुलाई–अगस्त माह में चश्मा लगाने से 65–75 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। मूलवृंत और पैच के जुड़ान के बाद मूलवृंत का भली प्रकार से ऊपरी हिस्सा काट देना चाहिए। जुलाई और अगस्त माह में उचित तापमान और आर्द्रता होने के कारण प्रर्वधन में अच्छी सफलता मिलती है।

**ikS/k jksi.k %** भूमि पर रेखांकन करके 1 X 1 X 1 घन मीटर के गड्ढे तैयार किये जाते हैं। गर्मी की ऋतु में खुदाई करते समय ऊपरी भूमि की मिट्टी को अंदरूनी मिट्टी के साथ इकठ्ठा करके गड्ढे के पास निश्चित में रखा जाता है। इन गड्ढों को 2–4 हप्ते तक धूप में सुखाया जाता है। इसके बाद सडी हुई खाद और मिट्टी से इन गड्ढों को भर देना चाहिए। वर्षा के दौरान जब बादल छाये हुए हों तब सायं काल में इन गड्ढों में पौध रोपण कर देनी चाहिए। गोमा प्रतीक प्रजाति के पौधों को 10 X 10 मी. के अंतर पर रोपण करना उपयुक्त पाया गया है।

beyh dk ikS/kk ,oa Qy

**[kkn %** दस वर्ष पुराने पौधे में 40–50 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद 500 ग्राम नाईट्रोजन, 800 ग्राम फॉस्फोरस एवं 800 ग्राम पोटास की पूरी मात्रा एवं नाइट्रोजन की आधी मात्रा जुलाई में डालें, शेष नाइट्रोजन अगस्त के अंतिम सप्ताह में डालें।

**dVkbZ vkSj NVkbZ %** नये विकसित पौधे पर 3–5 नई शाखाओं को अच्छी तरह से विकसित होने देना चाहिए जो पौधे की मुख्य शाखा में विकसित होता है। पौधे के 60–100 से.मी के ऊपर से शाखाओं को बढ़ने देना चाहिए। छटाई पौधे के कद और आकार को नियंत्रित करने वाली क्रिया है, जिससे बिना उपयोगी पत्तियों एवं शाखाओं को काटकर पेड़ का इच्छित विकास किया जा सकता है। वैसे तो इमली के पौधे में नियमित कटाई–छटाई की कोई जरूरत नहीं होती है, फिर भी सूखी हुई अविकसित और रोगग्रस्त डालियों को काट देना चाहिए। इमली के पौधे की कम ऊँचाई रखने के लिए तने को 4–6 मीटर ऊपर से काट देना चाहिए, जिससे फल की तुडाई करने में आसानी होती है, तथा पौधे की देखभाल भी सुचारू रूप से की जा सकती है।

**flapkbZ %** सामान्यतः इमली के पौधे में सिंचाई की जरूरत नहीं होती है, लेकिन नये पौधों को स्थापित करने के लिए गर्मी की ऋतु में आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए।

**iyokj ¼efYpx½** % वर्षा आधारित परिस्थितियों में पेड़ के थाले में कार्बनिक मल्चिंग का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है। पुवाल और घास से पलवार करने से जमीन में नमी संग्रहित होती है। इससे जमीन के तापमान का नियंत्रण, वाष्पीकरण को रोकना, कार्बनिक तत्वों एवं सुक्ष्मजीवों में बढ़ोतरी, पानी और खरपतवार में कमी तथा पौधे की अच्छी वृद्धि होती है।

**Qyksa dk vkuk** % चार साल के पौधे में फूल आने की शुरूआत होती है। नई शाखाओं पर फूल आते हैं। वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में जून माह में अधिक फूल आते हैं।

**Qyksa dk vkdkj ,oa xq.koÙkk** % वर्षा आधारित अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में नौ वर्ष के पौधे से 58.50 किग्रा तक फल प्राप्त होते हैं। फल का औसत वजन 26.70 ग्राम, लंबाई 16.70 सेमी, गूदा 50.50 प्रतिशत, अम्लता 14.6 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 71.00 डिब्रि. कुल घुलनशील पदार्थ 55.81 प्रतिशत, घटती शर्करा 27.27 प्रतिशत, विटामीन–सी 17.53 मिग्रा/100 ग्राम फल होती है। फल का आकार थोडा वक्र और गूदा लाल होता है। गूदा प्रसंस्करण के लिए अति उपयोगी पाया गया है।

**Qyksa dh rqMkbZ ,oa mit** % फूल आने के 9–10 माह बाद फल तुड़ाई के योग्य हो जाते हैं। मार्च माह में फल पक जाते हैं। फल का बाहरी रंग जब बादामी हो जाये और छिलका अंदर के गूदे से आसानी से अलग हो जाये तो फल परिपक्व एवं तुड़ाई के योग्य माना जाता है। वर्षा आधारित अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में नौ वर्ष के पौधे से 58.50 किग्रा तक फल प्राप्त होते हैं।

**beyh lq ynk iM**

संजय सिंह[1] एवं अरविंद कुमार सिंह[2]

*[1]अध्यक्ष, [2]प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी)*

*केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र (भाकृअनुप–केशुबासं, बीकानेर), वेजलपुर (गोधरा–गुजरात)*

**fgUnh Hkk"kk dk viuk,a blesa dk;Z djuk cgqr ljy vkSj lgt gSA ;g Hkkjrh;rk dh ,d igpku gSA**

# v/k'k"d {k= e tkeu yxkdj ykHk vftr dj

जामुन एक पोषक तत्वों से भरपूर फल वृक्ष है, जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। मुख्य रूप से इसका गूदा और बीज प्रयोग में लाया जाता है। इसे ग्रामीण और शहर में रहने वाले लोग प्रयोग में लेते हैं। यह मिनरल, प्रोटिन और कार्बोहाईडेड से भरपूर है। इसके फलों को ताजा रूप में खाया जाता है तथा जैली, जेम, स्क्वैस और सिरका बनाया जाता है। इसके बीज के पावडर का उपयोग मधुमेह संबंधित बीमारियों में उपयोग में लाते हैं। इसकी पत्ती में प्रोटिन, फाइबर, केल्सियम, फॉसफोरस, इत्यादि, पाये जाते हैं। इसके बीज में प्रोटिन 8.5 प्रतिशत, रेशा 16.9 प्रतिशत, केल्सियम 0.41 प्रतिशत, फॉसफोरस 0.17 प्रतिशत पाया जाता है। बीज में जेम्बोलीन तत्व पाये जाते हैं, जोकि मधुमेह (डायबीटिज) की बीमारी को नियंत्रित करता है। इसके फल में प्रतिऑक्सिकारिक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी छाल को भी घरेलु उपयोग में लाया जाता है। जामुन कृषि वानिकी एवं सामाजिक वानिकी के लिए उपयुक्त पौधा है। इसे विपरित परिस्थितियों में भी उगाया जाता सकता है। यह शुष्क बागवानी के लिए उत्तम पौधा है। इसकी लकड़ियां कृषियंत्र तथा धरेलू कार्य में उपयोगी होती हैं।

## okuLifrd fooj.k

जामुन मिरटेसी कुल का पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम *सीजाइजीयम क्यूमीनी* है। इसका पेड काफी बडा होता है। पौधों में फूल मार्च– अप्रैल में आते हैं। फल जून माह में पककर तैयार हो जाता है।

## feVVh rFkk tyok;q

जामुन खेती कम उपजाऊ मिट्टी में भी की जा सकती है एवं गहरी दोमट मिट्टी व बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। इसको उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में लगाया जा सकता है। यह पाला सहिष्णु पौधा नहीं है तथा पाले से छोटे पौधों को हानि पहुँच सकती है। इसे शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु में लगाया जा सकता है। औसत न्यूनतम व अधिकतम तापक्रम क्रमशः 10 डिग्री सेल्सियस व 40 डिग्री सेल्सियस जामुन के लिए उचित पाया गया है।

tkeu dh xkek fi;dk fdLe dk iM ,o i"iu

## okuLifrd io/ku

**n'kh ik/k r;kj djuk %** बीज को पॉलीथीन की थैली में जून–जूलाई महीने में बोते हैं। बीज का अंकुरण 15–25 दिन बाद होता है। देशी पौधों को 6 से 12 महीनों बाद मूलवृन्त के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

**lk¶V oM dye }kjk io/ku %** एक साल पुराने मूलवृन्त पर जब नई पत्तियॉ आने लगे तब इस पर सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग करते हैं। तीन से चार महीने पुरानी शाखा जिस पर कलिया अच्छी हो, उसका चुनाव करते हैं। इन शाखाओं की पत्तियों को कलम करने के 8–10 दिन पहले काट देते हैं, इस दौरान शिखर कली को किसी प्रकार की क्षति नहीं होनी चाहिए। मूलवृन्त के बीच में एक चीरा लगाते हैं। सायन के निचले भाग पर वेज आकार बनाते हैं, इस प्रकार तैयार सायन को मूलवृन्त में लगे चीरे में इस प्रकार बैठाते हैं कि दोनों आपस में जुड़ जाएं, इस जोड़ को पॉलीथीन की पट्टी द्वारा अच्छे से बाध देते हैं। मूलवृन्त और सायन शाखा का चुनाव तथा कलम करने का तरीका सही है तो, जुलाई–अगस्त में 60–70 प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है।

**LoLFkkus lk¶V oM dye fof/k %** इस प्रकार से कलम करने पर सफलता अच्छी मिलती है और बगीचा सरलता से तैयार हो जाता है। इस विधि में मूलवृन्त को तैयार गड्ढे में पहले से ही लगाकर रखते हैं और खेत में ही कलम बन्धन का कार्य सम्पन करते हैं। जुलाई–अगस्त में कलम करने से 65–75 प्रतिशत सफलता प्राप्त होती है। स्वस्थाने कलम करने से पौधे के विकास के साथ–साथ उपज भी अच्छी प्राप्त होती है।

**ip cfMx %** इसके लिए 9 माह पुराने देशी पौधे (मूलवृन्त) काम में आते हैं। मार्च–अप्रैल पैच बडिंग हेतु सर्वोत्तम समय होता है।

LoLFkku ip dfydk;u }kjk r;kj ik/k

**ckx dk lLFkkiu %** कलमी पौधों को 10 मीटर की दूरी पर लगाते हैं। 1 x 1 x 1 मीटर आकार के गड्ढे को मई–जून महीने में खोदकर खुला छोड देते हैं। वर्षा होने से पहले गड्ढे के ऊपरी हिस्से की मिट्टी में 25–40 किग्रा. सडी हुई गोबर की खाद को सतह से 30 सेमी. ऊपर तक भर देते हैं। बरसात के बाद जब मिट्टी स्थाई हो जाती है तो जुलाई–अगस्त महीने में पौधे को लगा दिया जाता है।

## dVkb&NVkb ,o l/kkb

प्रारम्भ में पौधों की काट–छांट उचित आकार देने के लिये की जाती है। मुख्य तने पर लगभग 90 सेमी. तक शाखा को नही रखना चाहिए, इससे आगे चलकर पौधे की निराई–गुड़ाई तथा खाद एवं उर्वरक का उपयोग करने में सुविधा रहती है। अच्छे आकार तथा वृद्वि के लिए पौधे के चारों ओर 4–5 शाखाएं बढ़ने देते हैं। जामुन को ज्यादा काट–छांट आवश्यकता नहीं होती, केवल रोग ग्रसित, सूखी तथा अनावश्यक शाखाओं को काटते रहना चाहिए। सघन बागवानी में 5 x 5 मीटर की दूरी पर पौधों को लगाते है। प्रतिवर्ष अक्टुबर महीने में छंटाई का कार्य किया जाता है। शाखाओं की वार्षिक वृद्वि का 25 प्रतिशत भाग काट देना चाहिए।

## [kkn ,o mojd

आठ वर्ष पुराने पौधे को लगभग 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॅासफोरस तथा 400 ग्राम पोटाश प्रतिपौधा प्रति वर्ष देना चाहिए। गोबर की सड़ी खाद एवं उर्वरक को जुलाई माह में मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

## tkeu e vUrorh Qly

जामुन के बाग से आर्थिक लाभ 5 वर्ष बाद मिलना प्रारम्भ होता है, इसलिए इनके मध्य कुछ ऐसी फसले उगाते हैं जिससे पौधे को हानि न पहुॅंचे, साथ ही साथ कुछ आय भी प्राप्त होती रहे। इनमें मुख्य रूप से चना, मटर, आदि फसलें लगाना अच्छा रहता है। वर्षाऋतु में लौकी व भिन्डी भी लगा सकते हैं।

## i"iu vkj Qyu

जामुन में फूल मार्च के महीने में आते हैं। कलमी पौधों में चार से पांच वर्ष बाद फूल आना प्रारंभ हो जाता है। इसमें परागण का कार्य मुख्यतया मधुमक्खियों द्वारा किया जाता है।

## dhV&0;kf/k

जामुन में तना छेदक कीडे का प्रकोप अधिक होता है। इसके नियंत्रण के हेतु छेद में पेट्रोल, केरोसीन तेल या किटनाशक दवा डालकर गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

## Qy rMkb ,o mit

जामुन के फल जून में पककर तैयार हो जाते हैं। पकने का समय प्रजातियों के अनुसार अलग–अलग होता है। एक विकसित पेड़ से 60–80 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं। जामुन के फल जब पेड़ पर गहरे बैंगनी रंग के हो जाय तो, उस समय उनकी सावधानी पूर्वक तुड़ाई करनी चाहिए। तुड़ाई के दौरान फलों को किसी प्रकार की चोट नहीं पहुॅंचनी चाहिए अन्यथा फल खराब हो सकते हैं। जामुन फल की भण्डारण क्षमता कम होती है, अतः स्थानीय बाजार में विपणन, शीत भण्डारण एवं मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाने की व्यवस्था रखनी चाहिए।

tkeu Qy

---

संजय सिंह[1] एवं अरविंद कुमार सिंह[2]
*[1]अध्यक्ष, [2]प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी)*
*केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र (भाकृअनुप–केशुबासं, बीकानेर), वेजलपुर (गोधरा–गुजरात)*

# uljh esa lfCt;ksa dh ikS/k rS;kj djuk

सब्जियों की पौध बनाना एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसका इसके उत्पादकों को ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। सब्जी फसलों में टमामर, बैंगन, मिर्च, शिमला मिर्च, पत्तागोभी, फूलगोभी, गाँठगोभी, बटनगोभी, ब्रसेल्स, स्पाउट, ब्राकाली, सलादपत्ता, चिकोरी, स्लीव, पार्सल, चेरबिल, पारस्निप, स्लोन, आर्टिचोकव, प्याज, इत्यादि की सर्वप्रथम पौध तैयार की जाती है। तत्पश्चात मुख्य खेत में उनका रोपण किया जाता है। पौध तैयार करने में बहुत सी सावधानियां रखना आवश्यक है। यदि किसान भाई इन वैज्ञानिक सुझावों के साथ पौध तैयार करें तो, उन्हें आाशातीत सफलता अवश्य मिल सकती है।

## ikS/k'kkyk ds fy, LFkku dk p;u

पौधशाला के लिए चयनित स्थान की मिट्टी हल्की होनी चाहिए। बलुई, दोमट मिट्टी हो जिसका पी.एच. 7 के आसपास होना चाहिए, ताकि बीज का जमाव सुचारु रुप से हो सके।

पौधशाला के पास सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। सूर्य का प्रकाश पूरे दिन बराबर मिलना चाहिए ताकि पौधे अच्छी तरह से विकसित हो सके। पौधशाला की भूमि का ढलान 5–10 प्रतिशत हो ताकि वर्षा का पानी क्यारी से बाहर बहकर चला जाए।

## ikS/k'kkyk dh rS;kjh

पौधशाला की मिट्टी की एक बार गहरी जुताई या फावड़े से, खुदाई अत्यंन्त आवश्यक है। इसके बाद सभी खरपतवार भी निकाल दें। प्रति वर्ग मीटर की दर से 2 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद या पत्ती की खाद या फिर 500 ग्राम केंचुएं की खाद डाल कर मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला दें।

## Hkwfe'kks/ku

हानिकारक जीवाणुओं के बचाव के लिए भूमिशोधन अत्यंन्त आवश्यक है। भूमिशोधन कई प्रकार से किया जा सकता है। इसकी प्रमुख विधियां निम्नलिखित अनुसार हैं:

**e`nk lkSjhdj.k fof/k ¼e`nk lksyjkbZt'ku½** पौधशाला की मिट्टी को सूर्य के प्रकाश से सोजन करने को मृदा सौर्यीकरण विधि (मृदा सोलेराइजेशन) कहते हैं। इस विधि में पौधशाला में क्यारी बनाकर इसको 200 गेज की पॉलीथीन की चादर से ढक कर चारों तरफ से किनारों को मिट्टी से दबा देते हैं, ताकि पॉलीथीन की अन्दर से हवा तथा नमी न निकले। यह कार्य 15 अप्रैल से 15 जून तक किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार 4–6 सप्ताह बाद पॉलीथीन की चादर हटाकर मिट्टी की गुड़ाई करके फिर बीज की बुआई करते हैं। सौर्यीकरण से रोगकारक मर जाते हैं तथा मिट्टी में उपस्थित सूत्रकृमि की मात्रा में कमी आती है, साथ ही जीवाणु धब्बा बीमारी से पूरी तरह मुक्ति मिल जाती है।

**tSfod fof/k%** पौधशाला में आर्द्रगलन बीमारी से बचाव करने के लिए मृदा सौयीकरण को अलग जैविक विधि से भूमिशोधन भी काफी फायदेमंद है। पौधशाला में *ट्राइकोडरमा* की विभिन्न प्रजातियाँ, सुडोमोनाज, फ्लोरोसेन्स तथा एस्परजिलस नाइजर का प्रयोग बीज शोधन एवं भूमि शोधन में किया जाता है। इस विधि में जिस भी जैव नियंत्रक पदार्थ का प्रयोग करना है उसमें उसके जीवित तथा सक्रिय बिजाणु की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए। जैव नियंत्रक मिलाते समय पौधशाला की मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। इस विधि का प्रयोग किसी अनुभवी व्यक्ति के देखरेख में ही करना चाहिए ।

**jklk;fud fof/k%** जैविक पदार्थों के अभाव में कीटनाशक रासायनिकों से भी भूमिशोधन करते हैं। क्यूरॉडाव की 5 ग्राम मात्रा प्रतिवर्ग मीटर पौधशाला की क्यारी में डालकर अच्छी तरह मिलाने के बाद बीज की बुआई करते हैं।

**cht 'kks/ku%** बीज शोधन के लिए कैप्टान या थिरम नामक दवा की 3 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा.बीज की दर से प्रयोग करें। मिर्च तथा बैंगन के बीज का शोधन कार्बेन्डाजिम (बनास्तित2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से करना चाहिए। टिण्ड़ा, करेला, तरबूज आदि सब्जियों के बीजों का शोधन केप्टान के 0.25 प्रतिशत (2.5 ग्राम/ली.) पानी में करें ।

**D;kfj;k cukuk%** पौधशाला में बीज की बुआई करने के लिए क्यारियों को मौसम के अनुसार बनाया जाता है। वर्षा ऋतु में क्यारी जमीन से 15–20 सेमी. ऊँची बनानी चाहिए और रबी मौसम में पौध समतल क्याारियों में भी उगा सकते हैं।

## cht dh cqvkbl

**fNVdok fof/k %** यदि छिटकाव विधि से पौध तैयार करनी है तो, लगभग 1.0 सेमी. की दूरी पर बुआई करें।

**drkjks esa cht cqvkbl %** यह बीज सर्वोत्तम है इस विधि में क्यारी की चौड़ाई के समानान्तर 0.5 सेमी. गहरी पक्तियाँ बना लेते हैं और इन्हीं में बीज लगभग 1.0 से.मी. की दूरी पर डालते हैं ।

## D;kfj;k dk <duk

क्यारियों में बीज बुआई करने के बाद उनको ढकना अत्यंन्त आवश्यक है। अतः मिट्टी, सडी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद व बालू तीनों को बराबर अनुपात (1:1:1) में मिलाकर क्यारी में इस प्रकार डालें की सभी बीज ढक जाएं।

## flapkbl

आरंभ में 5–6 दिनों तक क्यारी में हल्की सिंचाई करें। बीज जमने के बाद आवश्यकता के अनुसार खुली सिंचाई कर सकते हैं। बारिश होने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पौधशाला में बरसात के अतिरिक्त पानी को निकालने के लिए नालियाँ होनी चाहिए।

## ikS/k lqj{kk

**inxyu ¼MSEihx vkWQ½** पौधशाला में प्रायः यह देखा जाता है कि पौधे पदगलन बीमारी जो विभिन्न फफूंदी (विधियम राईजोक्लोनिया) से फैलती है। इसमें पौधे गलकर जमीन पर गिर जाते हैं। इस बीमारी के प्रकोप से बचाने के लिए कॅप्टोन या थीरम नामक दवा की 2.5 ग्राम मात्रा का प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी को तर करें इससे रोग का फैलाव रुक जाता है।

**thok.kq /kCck%** वर्षा ऋतु में पौध पर इस बीमारी का प्रकोप होता है। पत्तियों पर काले धब्बे बन जाते हैं। इस स्थिति में स्ट्रेप्टोसाइक्लीन दवा का 150 पी.पी.एम.(150 मि. ग्रा./लीटर पानी) का घोल बनाकर एक बार छिड़काव कर देने से रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

**fo"kk.kq jksx%** विषाणु रोग सफेद मक्खी नामक किटाणु से फैलता है। इस रोग में पत्तियाँ सिकुड़कर टेढ़ी–मेढ़ी व छोटी हो जाती हैं। इस रोग से बचाव के लिए बीज की बुआई से पहले पौधशाला मिट्टी में फयूराडान (3 जी) 5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से छिड़ककर मिला देते हैं। बीज जमने के बाद मोनोक्रोटोफॉस या मेटासिस्टाक्स दवा के 1.5 मि.ली. मात्रा /लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें तथा क्यारियों को एग्रोनेट (जाली) से ढक दें, ताकि कीट या मक्खी अन्दर प्रवेश न कर सके।

---

पुष्पेन्द्र प्रताप सिंह
*वरिष्ठ वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)*
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

# Qy o{kk dh nfgd fodfr;k ,o mudk funku

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत आबादी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर करती है। खेती से करोड़ों लोगों का रोजगार और व्यवसाय जुड़ा हुआ है। तथापि हमारे देश की औसत फलोत्पादकता कई देशों की अपेक्षा कम है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, गुड़गॉव के वर्ष 2010–11 के ऑकड़ों के अनुसार भारत में 63.8 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फलों की खेती की जाती है, जिससे 748.7 लाख टन पैदावार प्राप्त होती है। देश में फलों की औसत उत्पादकता मात्र 11.7 टन बैठती है जो विश्व की औसत उत्पादकता 10.9 टन/हे. से तो अधिक है पर यह अधिकतम उत्पादकता जो इण्डोनेशिया में 22.4 टन/हे. है, की अपेक्षा 48 प्रतिशत ठहरती है। स्पष्ट है फलों की औसत उत्पादकता को 205 प्रतिशत बढ़ाये जाने की संभावना है।

फलों की उत्पादकता कई कारकों पर निर्भर करती है। वृक्षीय कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों में एक मुख्य कारक है। दैहिक विकृतियाँ उनमें से एक है। प्रस्तुत आलेख में कुछ प्रमुख फल वृक्षों में बहुधा देखे जाने वाले प्रमुख दैहिक विकृतियों को समावेशित किया गया है। इन विकृतियों के लक्षण और निवारणों को भी आलेख में संयोजित किया गया है।

**rkfydk 1% fofHkUu n'kk dh vi{kk Hkkjr e Qyk dk vkSlr mRiknrk ¼Vu@g-½**

| Qyk dk uke | Hkkjr | fo'o d n'k ,o mRiknrk |
|---|---|---|
| सन्तरा | 10 | इण्डोनेशिया – 35.0 |
| पपीता | 39.6 | इण्डोनेशिया – 85.8 |
| आम | 7.1 | ब्राजील – 15.8 |
| अमरूद | 7.1 | ब्राजील – 15.8 |
| केला | 35.9 | इण्डोनेशिया – 59.3 |
| अंगूर | 11.1 | अमरीका– 16.3 |
| अनन्नास | 15.9 | इण्डोनेशिया – 69.5 |
| सेव | 10.0 | फ्रांस – 42.8 |

## uhcqoxh; Qy

**CykLVkehuh;k %** यह मुख्य रूप से कागजी नींबू में देखा जाता है। इस विकृति में पौधे के सिरे पर पत्तियों के कक्ष से कई शाखा की बढ़वार होती है। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है, पत्तियाँ गुच्छे में बदल जाती हैं, हरिमाहीनता और अंततः प्रभावित पत्तियाँ झड़ जाती है। यह विकृति संक्रमित कलिका से एक पेड़ से दूसरे पेड़ में फैलती है। इसके निदान हेतु ऑक्सी– टेट्रासाइक्लिन हाइपोक्लोराइड के 200 पी पी एम घोल का एक सप्ताह के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

**d.khHkou** : यह विकृति मौसम्बी में मुख्य है। इस विकृति के कारण फल की रसधानी सख्त, बड़ी और भूरी हो जाती है। रसधानियाँ मोटी और सख्त हो जाती है। फलों में पेक्टिन की मात्रा बढ़ जाती है। छिल्का व रेशा अनुपात बढ़ जाता है। छिलका मोटा और फल हल्का व फूला हुआ महसूस होता है। फल में रस और कुल घूलनशील ठोस की मात्रा कम हो जाती है। एसे फलों में अंकुरणक्षम्य बीजों की संख्या घट जाती है।

ekSlEch e d.khHkou

यह अधिक सापेक्षिक आर्द्रता, फल विकास के समय अधिक तापक्रम, बार–बार सिंचाई, पौधे की अधिक वृद्धि, अधिक फैलाव, बड़े आकार का फल, अधिक नत्रजनी उर्वरक का प्रयोग, अधिक वृद्धिशील मूलवृन्त जैसे खुरदरा नींबू, खट्टी, खट्टे संतरे का प्रयोग, अत्यधिक काट छॉट या दूसरे अन्य कारण जो अधिक वृद्धि को प्रेरित करते हैं, के कारण होता हैं। इसके निदान हेतु सिंचाई का अन्तराल अधिक रखना चाहिए। नत्रजनी उर्वरक का कम प्रयोग करना चाहिए। पौधे पर जस्ता, नीला थोथा व पोटाश, प्रत्येक के 0.25 प्रतिशत घोल का अगस्त– सितम्बर में छिड़काव व फलों की अगेती तोड़ाई करना लाभप्रद होता है।

**Qyk dk QVuk %** नीबू में फलों का फटना एक व्यापक समस्या है। यह मुख्य रूप से जून–जुलाई में देखी जाती है। इसके प्रभाव 40 प्रतिशत बाजार योग्य फल बेकार हो जाते हैं। छोटे अवस्था में फलों पर छोटे दरार बनते हैं जो बाद में फलों के विकास के साथ बड़े हो जाते हैं। फलों के फटने की समस्या परिपक्वता अवस्था पर देखी जाती है। अधिक सिंचाई या सूखे की लम्बी अन्तराल के बाद वर्षा होना फटने की समस्या का मूल है। फल वृक्ष के चारों तरफ ऊँचा बढ़ने वाले फसल जैसे ढ़ैचा उगाकर छाया करने से फटने की समस्या को कम किया जा सकता है। एन ए ए 40 पी पी एम या जिब्रेलिक अम्ल 40 पी पी एम, या पोटैशियम सल्फेट 8.0 प्रतिशत घोल का मई माह में छिड़काव कर फटने का नियंत्रित किया जा सकता है। हल्का पीला पड़ चुके परिपक्व फलों को समय से तोड़ना फल फटन रोकने में लाभप्रद है।

## vkoyk

**Ård{k; :** गुठली के सख्त होन के समय फल का गूदा भूरा पड़ जाता है। इसके बाद फल का उपरी भाग भूरा हो जाता है। फल की उपरी सतह अंततः काली पड़ जाती है। फल के उपर गोंदधानी बन जाती है। यह बोरान की कमी से होता है। चकैया किस्म में उत्तकक्षय की उग्र समस्या होती है। इसके नियंत्रण हेतु बोरेक्स के 0.6 प्रतिशत घोल

vkoyk esa Ård{k; jksx

का छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव सितम्बर–अक्टूम्बर में 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

## vke

**xEek %** यह दो प्रकार का होता है; वानस्पतिक तथा जननात्मक। प्रथम प्रकार में शाख के सिरे पर पत्तियॉ गुच्छे के रूप में परिवर्तित हो जाती है। गॉठों की लम्बाई छट जाती है। गांठ पर पत्तियॉ गुच्छे के रूप में बदल जाती है। पत्र फलक का आकार छोटा हो जाता है। पर्णवृन्त का आकार छोटा हो जाता है। जननात्मक विकृति में बौर सघन हो जाता है। उसका रंग हरा हो जाता है। बौर में फूल गुच्छे में पास–पास लगे होते हैं। फूलों में बाह्य दलपूंज, पंखुडियॉ मोटी हो जाती है। विकृत पुष्प गुच्छ, फलन ऋतु की समाप्ति के बाद भी पेड़ से लगे रहते है। निदान के लिये पेड़ पर लगे समस्त विकृत बौरों को पेड़ से काटकर अलग कर देना चाहिए। पेड़ पर अक्टूबर में एन ए ए के 200 पी पी एम घोल का छिड़काव करना चाहिए।

**dkyk fljk %** प्रभावित फल में सिरे की और काला धब्बा बनता है। ऐसे फल समय से पूर्व पक जाते है और पेड़ से झड़ जाते हैं। प्रभावित फलों का बाजार मूल्य घट जाता है। इस तरह की विकृति ईंट भट्ठे वाले क्षेत्र में अधिक देखा जाता है। प्रभावित पेड़ पर फूल आने के समय, पूर्ण पुष्पन के समय व फल टिकाव के समय बोरेक्स के 0.6 प्रतिशत

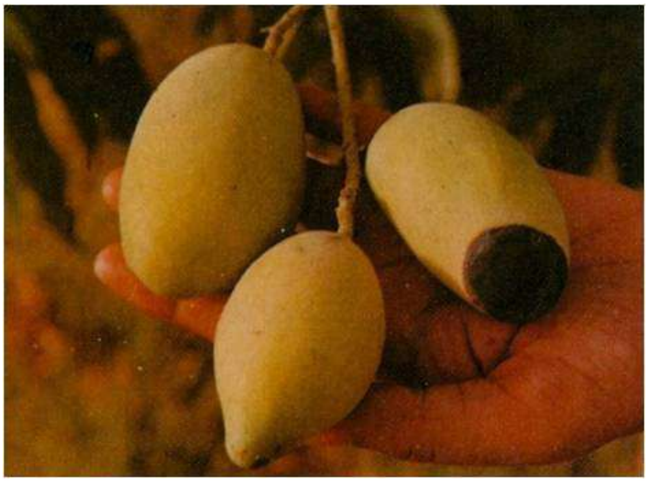

vke esa dkyk fljk

घोल का छिड़काव करना चाहिए। ईंट भट्ठा बाग से 1.8–2.0 किमी. दूर हो तो अच्छा रहता है।

**>qedk** : इस विकृति में बौर के सिरे दर फल गुच्छे में लगे रहते हैं। फल का रंग गहरा हरा हो जाता है तथा वे अधिक घुमावदार हो जाते हैं। फल का रंग पीला पड़ जाता है। फल बौर से लम्बे समय तक जुड़े रहते हैं। यह असामान्य मौसम के कारण अपर्याप्त परागण व निषेचन के कारण होता है। फूल आने के समय छिड़काव करने से परागकारी कीट फूलों से विमुख हो जाते हैं। इस विकृति से निजात पाने के लिये पुष्पण के समय पेड़ पर कीट रक्षी रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिए। पौधे पर नवम्बर माह में एन ए ए के 200–300 पी पी एम घोल का छिड़काव करना चाहिए।

**en~ ukd** : सिरे के तरफ गूदा मुलायम पड़ जाता है। जबकि उपर की ओर फल का गूदा सख्त रहता है। प्रभावित फल का गूदा भूरा–काला पड़ जाता है जिससे वह गद्देदार हो जाता है। पेड़ पर फल के लम्बे समय तक बने रहने से यह समस्या उग्र हो जाती है। यह नत्रजन की अधिकता एवं कैल्शियम का अनुपयुक्त मात्रा के कारण होता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को पेड़ से ससमय तोड़ लेना चाहिए। बाग में पोषक तत्व प्रबंधन का ध्यान रखना चाहिए।

जितेन्द्र सिंह
*उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय*
*कोटा परिसर, झालरापाटन, झालावाड़– 326 023 (राज.)*

**AA thoukmi;ksxh ckrsa AA**

**dfBukb;ksa dk vFkZ vkxs c<uk gS u fd grksRlkfgr gksuk gSA**
**vko';drk ls vf/kd cksyuk ;k fy[kuk Lo;a ds fy, gkfudkjd gksrk gSA**
**leL;k ls igys fparu djuk viuh gh gkfu djuk gksrk gSA**
**uk le> 0;fDr ;fn [kqn dks le> ys rks blls cMh dksbZ pht ugha gksrh gSA**
**viuk 'kjhj dks LoLFk j[kus ds fy, le; ij vkSj LokLF;izn Hkkstu djuk pkfg,A**
**thou esa lq[k vkSj nq%[k nksuksa dk vFkZ@eksy igpkusaA**
**thou ds leku o{k mxrk gS] c<rk gS] Qyrk gS] Qyrk vkSj lekIr gks tkrk gSA**

# dj & e#LFkyh; {k= e ,d cgqi;kxh Qynkj >kMh

पश्चिमी राजस्थान का रेतीला भूभाग थार मरुस्थल की हृदयस्थली है, यहाँ वर्षा बहुत ही कम होती है, तापमान में असमानता एवं बलुई मृदाओं की जलधारण क्षमता के कम होने के कारण इस क्षेत्र में खेती कार्य चुनौतीपूर्ण एवं जोखिम भरा रहता है। इन विषम भौगोलिक एवं जलवायुवीय परिस्थितियों के बावजूद प्रकृति ने इस क्षेत्र को बहुत सी बहुवर्षीय झाड़ियों एवं पेड़ों की सौगात दी है, जो न केवल इन प्रतिकूल परिस्थितियों में फलती फूलती हैं अपितु ग्रामीणों के जीवनयापन एवं आजीविका का सहारा भी है। इनमें मुख्य हैं, खेजड़ी, कैर, झरबेरी, मीठा जाल, कुम्मट, फोग, खींप आदि। इन सब में कैर एक ऐसा बहुउद्धेशीय झाड़ीनुमा लघु वृक्ष है जो बहुत ही कम वर्षा अथवा अकाल की स्थिति में भी न केवल पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक फल प्रदान करता है वरन् इस क्षेत्र की जैव विविधता संरक्षण एवं वायु अपरदन रोकने में भी उपयोगी झाड़ी है। इसकी कोमल शाखाओं को भेड़ बकरियां तथा ऊँट बहुत ही चाव से खाते है। मारवाड़ में इसकी लकड़ी का धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों जैसे हवन, यज्ञ आदि में विशेष महत्व है। साथ ही ईंधन के रूप में इसका काफी उपयोग होता है।

केर उत्तरी पश्चिमी राजस्थान में झुन्झुनू, सीकर, चूरू, बीकानेर, नागौर, जोधपुर, बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में जोहड़ों, ओरन, गौचर, चरागाहों, अकृष्य भूमि तथा खेतों की मेड़ों पर पाया जाता है। यह कंकरीले व रेतीले मैदानी भागों में अधिक मिलता है। यह एक बहुशाखीय फैलावदार एवं कंटीली झाड़ी है जो लघु वृक्ष के रूप में भी आसानी से दृष्टिगोचर हो जाती है। नई शाखाओं पर कुछ समय के लिए पत्तियाँ आती हैं जो शीघ्र ही झड़ जाती हैं, अतः केर की शाखाऐं प्रायः पत्तियाँ विहीन ही दिखाई देती है। मुख्यतः इसके फूल हल्के गुलाबी से लेकर गहरे लाल तथा कुछ पौधों में पीले रंग के भी होते है। वैसे तो केर में फूल मार्च से लेकर नवम्बर माह तक देखे जा सकते है परन्तु ग्रीष्मकालीन ऋतु में सर्वाधिक फूल आते है, तत्पश्चात फलों का उत्पादन भी अच्छा होता है।

>kMhuek Qykonkj dj

## Qyk dk ijEijkxr mi;kx rFkk iLdj.k

प्रायः केर के फलों को अपरिपक्व अवस्था में ही तोड़कर सब्जी तथा अचार के रूप में काम में लिया जाता है क्योंकि एक तो इस अवस्था पर बाजार भाव अच्छा मिलता है, दूसरा गुणवता एवं पौष्टिकता भी अच्छी होती है। इसकी पुष्प कलिकाओं को भी सब्जी हेतु काम में लिया जाता है, जिनका पौषक मान भी अच्छा होता है (तालिका 1)। ताजा कच्चे फलों का स्वाद बहुत ही कसैला एवं खट्टा होने के कारण इनका सीधा उपयोग सब्जी व अचार बनाने में नहीं किया जाता, अपितु उपयोग से पहले इनका प्रसंस्करण किया जाता है। ताजा फलों को इकटठा करने के बाद उनके तन्तु को हटाकर प्रति किलोग्राम फलों के हिसाब से 250 मिलीलीटर छाछ एवं 50 ग्राम नमक मिलाकर किसी बर्तन में डालकर उपर से इतना पानी डालते हैं कि सारे फल घोल में डूब जाऐं तत्पश्चात् बर्तन को ढककर सूर्य के प्रकाश में रखते है। 4–5 दिन बाद इस घोल से फलों को बाहर निकाल लेते हैं तथा इस प्रक्रिया को 3–4 बार दोहराते हैं, जब तक कि फलों का कसैलापन खत्म न हो जाए और उनका स्वाद सामान्य नमकीन न हो जाऐ। इस प्रक्रिया से प्रसंस्कृत फलों को सब्जी तथा अचार बनाने में प्रयुक्त किया जा सकता है। साथ ही इन फलों को निर्जलीकृत करके वर्ष भर उपयोग में लिया जा सकता है। सामान्यतया: इस प्रक्रिया से तैयार एक किलोग्राम ताजा अपरिपक्व फलों से 200 से 250 ग्राम सूखे फल ही प्राप्त होते हैं परन्तु इनका बाजार भाव ताजा फलों की तुलना में 8 से 10 गुना रहता है। आकार के अनुसार फलों को तीन श्रेणी में (छोटे, मध्यम एवं

**rkfydk 1% dsj dh iq"i dfydk] rktk ,oa iqLrd 'kq"d Qyksa dk vkSlr tSojklk;fud l?kVu**

| vo;o | iq"i dfydk | rktk Qy | iqLrd 'kq"d Qy |
|---|---|---|---|
| नमी (प्रतिशत) | 65.5 | 78.4 | 10.9 |
| कूल प्रोटीन (प्रतिशत) | 22.6 | 29.6 | 12.4 |
| कुल कार्बोहाइड्रेड (प्रतिशत) | 63.4 | 55.9 | 53.2 |
| कूल रेशा (प्रतिशत) | 8.0 | 10.7 | 12.4 |
| एनडीएफ (प्रतिशत) | 26.8 | 30.6 | – |
| वसा (प्रतिशत) | 7.9 | 8.4 | 5.8 |
| कुल भष्म (प्रतिशत) | 6.0 | 11.5 | 5.3 |

बड़े) बांटा जा सकता है। छोटे फलों का बाजार मूल्य हमेशा अधिक रहता है तथा इनकी मांग भी सर्वाधिक रहती है।

राजस्थान प्रदेश में विभिन्न मांगलिक अवसरों तथा त्योहारों पर एक विशेष प्रकार की सब्जी बनायी जाती है जिसको पंचकूट कहते है (तालिका 2) जिसमे केर, कुम्मट, सांगरी, काचरी तथ लसोड़ा का एक आदर्श अनुपात रखा जाता है। इस रेगिस्तानी भूभाग में बहुतयत से पैदा होने वाले ये पांचों पदार्थ एक विशिष्ट महक तथा स्वाद के साथ साथ पोषक तत्व की बहुलता रखते हैं, परन्तु एकल सब्जी तथा खाद्य पदार्थ के रूप में इनका प्रयोग सीमित है। परन्तु जब इन पांचों को एक आदर्श अनुपात में मिलाकर सब्जी बनाई जाती है तो इससे न केवल पौष्टिकता व पाचकता बढ़ती है अपितु इसमें एक विशेष महक होती है जिसके कारण इसकी व्यापक स्वीकार्यता तथा अत्यधिक मांग रहती है। आजकल पंचकूट की सब्जी प्रदेश तक ही सीमित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में पंचसितारा होटलों व रेस्तराओं में भी इसकी मांग दिनोदिन बढ़ती जा रही है।

## vkS"k/kh; xq.k

आयुर्वेदिक एवं यूनानी पद्धति में केर की जड़, छाल एवं फलों के औषधीय गुणों का उल्लेख है। इसकी छाल दमा एवं खांसी में लाभप्रद है। जड़ की छाल को ज्वर के निदान हेतु उपयोगी माना गया है। इसकी नई शाखाओं का उपयोग दांत दर्द व पायरिया में किया जाता है। नवीन कोमल शाखाओं का पत्तियों सहित लेप करने से फोड़े एवं सूजन में राहत मिलती है।

Nk;knkj dsj ¼y?kq o{k½

## dsj dk laj{k.k rFkk lEHkkouk,a

पिछले कुछ दशकों से बढ़ते जनसंख्या घनत्व, शहरीकरण, ढांचागत विकास, सिंचित क्षेत्र में वृद्धि, भूउपयोग बदलाव और कृषि में मशीनीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण केर का प्राकृतिक आवासीय परिवेश सिकुड़ता जा रहा है। साथ ही जोहड़ों, ओरन, गौचर एवं चरागाह क्षेत्र भी दिनोदिन घटते जा रहे है जहां केर सर्वाधिक संख्या में दृष्टिगोचर होते थे। क्योंकि केर का इस क्षेत्र में वर्ष प्रतिवर्ष पड़ने वाले अकाल के बावजूद फलोत्पादन के साथ साथ मरुस्थलीय पारिस्थितिकी के संतुलन

**rkfydk 2% iapdwV RkFkk mlds ?kVdksa dk l?kVu rFkk vkuqikfrd ek=k**

| iks"kd rRo | dkpjh | dsj | lkaxjh | yllksMk | dqEeV | iapdwV feJ.k |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नमी (प्रतिशत) | 8.3 | 10.9 | 6.7 | 9.9 | 10.5 | 8.7 |
| प्रोटीन (प्रतिशत) | 2.2 | 12.4 | 17.1 | 9.3 | 33.3 | 16.0 |
| कार्बोहाइड्रेट (प्रतिशत) | 58.5 | 53.2 | 47.5 | 46.9 | 32.3 | 46.5 |
| वसा (प्रतिशत) | 10.0 | 5.8 | 1.7 | 5.1 | 9.1 | 5.6 |
| रेशा (प्रतिशत) | 9.5 | 12.4 | 22.5 | 24.7 | 10.3 | 17.6 |
| भष्म (प्रतिशत) | 11.4 | 5.3 | 4.5 | 4.4 | 4.5 | 5.6 |
| मात्रा (ग्राम प्रति किग्रा) | 160 ग्राम | 80 ग्राम | 360 ग्राम | 200ग्रम | 200 ग्राम | 1000 ग्राम |

तथा मरुस्थलीकरण को सीमित करने में भी अहम योगदान है। अतः बदलते परिवेश में इस महत्वपूर्ण झाड़ी की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, जैसलमेर में केर के जनद्रव्य संरक्षण के प्रयास शुरू किए गए हैं।

प्रायः केर का पौधा 5–6 वर्ष का होने पर फल देना शुरू कर देता है तथा 3 से 4 किलोग्राम फल प्रति पौधा आसानी से प्राप्त हो जाते है। पौधों की आयु बढ़ने के साथ उत्पादकता भी बढ़ती है। अगर केर का 5 गुणा 5 मीटर पर सुव्यवस्थित रोपण किया जाए तो प्रति हैक्टर 400 पौधे लगाए जा सकते है। इस प्रकार 1200 से 1600 किलोग्राम फल प्रति हैक्टर प्राप्त किए जा सकते है। ताजा कच्चे फलों का बाजार भाव 35 से 60 रूपये प्रति किलोग्राम तक आसानी से मिल जाता है। अगर स्थानीय स्तर पर इनका प्रसंस्करण तथा श्रेणीकरण किया जाये तो स्थानीय बाजार में केर के सूखे फलों की कीमत 500 से 600 रूपये प्रति किलोग्राम तक मिल जाती है। यहां यह उल्लेखित करना अतिआवश्यक है कि स्थानीय स्तर पर कैर की तुड़ाई से लेकर प्रसंस्करण और अचार बनाने तक की सारी क्रियाएं महिलाओं द्वारा ही की जाती हैं। अतः यह रेगिस्तानी क्षेत्र जहां महिला शिक्षा आज भी कम है, रोजगार एवं आजीविका के द्वारा महिलाओं को आत्मनिर्भरता प्रदान करता है। साथ ही केर का रोपण अकृष्य तथा क्षरित भूमियों में करके वनीकरण किया जा सकता है। सिंचित क्षेत्रों में इसे खेतों की मेड़ों पर लगाया जा सकता है, जिससे फसलों को पाले एवं गर्म हवाओं से बचाया जा सकता है और एक सूक्ष्म जलवायु हो जाती है जो फसल उत्पादन में सहायक होती है।

हंसराज महला एवं जयप्रकाश सिंह
*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र,*
*जैसलमेर 345 001*

i"iu voLFkk e dj dh 'kk[kk,¡

dj ij yx Qy

rktk vifjiDo Qy

iLLdr ,o J.khdr Qy

# e#{k= e uhc vk/kkfjr df'k&ckxokuh i)fr e Qlyk dk fofof/kdj.k

पश्चिमी राजस्थान की वातावरणीय परिस्थितिकी एकवर्षीय फसलोत्पादन के लिए बहुत उपयुक्त नही मानी जाती है। यहाँ की कम वर्षा, वर्षा दिनों में अधिक अंतराल, अकाल एवं सूखे की अत्यधिक सम्भावनाएं, हल्की बलुई एक कम उपजाऊ मृद्रा, कम जल धारण क्षमता, अत्यधिक तापमान प्रतिकूलता की स्थिति उत्पन्न करते हैं। प्रदेश में इन्दिरागांधी नहर परियोजना के पादुर्भाव एवं परियोजना क्रियान्वन, भूमिगत जल स्त्रोतों के दोहन, नलकूपों द्वारा फसलों की सिंचाई, अत्याधुनिक सिंचाई संसाधनों (फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई) की उपलब्धता के साथ ही साथ फलदार एवं अन्न की फसलों की उन्नत किस्मों का विकास, प्रचार एवं प्रसार ने मरुक्षेत्र में आधुनिक कृषि में नये आयाम पैदा किये हैं। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही साथ उत्पादन की निश्चितता को भी निर्धारित किया है। पश्चिमी राजस्थान में भूमि या मृद्रा अपरदन को रोकने के लिए वैज्ञानिकों एवं कृषकों के प्रयासों से मृदा अपरदन बहुत कम हो रहा है। कृषि वैज्ञानिकों ने फसलोत्पादन बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकों का विकास किया है। मृदा अपरदन रोकने के लिए खेतों में बहुवर्षीय फल वृक्षों, पेड़ों को फसलों के साथ लगाया जा सकता है।

कृषि बागवानी पद्धति इसी दिशा में एक ऐसा कदम है जिससे वायु मृदा अपरदन या क्षरण को रोकने के साथ प्रति इकाई क्षेत्र से अधिकतम उत्पादन देता है। इसमें बागवानी फसलों या फलदार पेडों के बीच में फसलों को साथ–साथ उगाया जाता है। फल वृक्षों की पैदावार एवं बढ़वार कम न हो इसके लिए उपयुक्त कम प्रतियोगी फसलों का चुनाव करना चाहिए। कृषि बागवानी एक फसल सम्पूर्ण नष्ट न होने का बीमा देती है जैसे यदि, किसी कारणवश एक फसल नष्ट हो जाय तो उसी परिस्थिति में दूसरी फसल कुछ न कुछ उत्पादन अवश्य देती है। फलदार वृक्षों के बीच सिंचित एवं असिंचित दोनों तरह की फसलें ली जा सकती है।

पानी की उपलब्धता बहुत कम है तो फलदार वृक्षों को बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) में लगाकर खरीफ में असिंचित फसलें ली जा सकती हैं, किन्तु यदि सिंचाई की समुचित मात्रा उपलब्ध है तो, व्यवसायिक फसलें लेकर अच्छा उत्पादन एवं लाभ लिया जा सकता है। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर में नीबू आधारित कृषि–बागवानी में अन्तः फसलों का विविधिकरण प्रयोग में फसलों का नीबू के साथ उत्पादन एवं फल वृक्षों पर प्रभाव का अध्ययन 9 वर्षीय नीबू के पौधों के साथ वर्ष 2009 में किया गया।

नीबू के पौधों को 5 x 6 मी. के अन्तराल पर लगाया गया तथा बीच के 4 मी. अन्तराल में अन्तः फसलें जैसे– खरीफ में मूंग एवं रबी में सरसों, इसबगोल एवं जीरा की बुआई की गयी। क्षेत्र की जलवायु के आधार पर फव्वारा सिंचाई विधि से 3 सिंचाई खरीफ में (वर्षा न होने पर) एवं 5 सिंचाई रबी की फसलों में दी गयी। नीबू के पौधों की वृद्धि का आकलन नवम्बर में किया गया।

uhc dk 0;ofLFkr cxhpk

## ik/k of) ,o QlykRiknu

कृषि बागवानी पद्धति में फव्वारा सिंचाई विधि से सिंचित नीबू के पेड़ों में अधिकतम ऊंचाई 447.8 सेमी. एवं तना की मोटाई 45.1 सेमी., नीबू के साथ मूंग–जीरा फसल चक्र में पायी गयी। पौधों का अधिकतम फैलाव 16.65 मी. नीबू के साथ मूंग–इसबगोल में पाया गया। खरीफ में नीबू के साथ सभी फसल चक्रों में मूंग की फसल बोई गयी थी, अतः फल वृक्षों में वृद्धि पर रबी फसलों का प्रभाव अधिक रहा। (तालिका–1)। नीबू के फलोत्पादन पर भी अंतः फसल चक्र का प्रभाव देखा

गया तथा यह उत्पादन लगभग 108 प्रतिशत तक अधिक पाया गया।

विभिन्न फसल विविधिकरण में सरसों एवं नीबू समतुल्य उत्पादन क्रमशः 4932.17 एवं 2170.16 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नीबू के साथ मूंग–सरसों अंतः फसल चक्र में पाया गया जो 533. 6, 552.6 प्रतिशत बिना अन्तः सस्यन से अधिक था। मूंग–जीरा एवं मूंग–इसबगोल में सरसों एवं नीबू समतुल्य उत्पादन भी क्रमशः 407.8 एवं 248.0 प्रतिशत बिना अन्तः सस्यन से अधिक था (तालिका–2)।

कृषि बागवानी पद्वति में सबसे अधिकतम कुल आय (पौधारोपण के 9 वे वर्ष) रु.108507 थी जो नीबू के साथ मूंग–सरसों के अतः फसलचक्र में पायी गयी जो केवल नीबू की फसल से अधिक थी ।

इस प्रकार कृषि बागवानी पद्वति अपनाकर विभीन्न फसलों के विविधिकरण द्वारा बिना किसी फल वृक्षों में हानि के कम समय में एक ही क्षेत्र से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

एन.डी. यादव, एम.एल. सोनी, बीरबल, एन.एस. नाथावत
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,*
*प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर–334004*

**rkfydk 1% uhcw dk lkFk fofHkUu Qlyk dk vr%lL;u ea vkSlr of) ,oa mRiknu A**

| df"k ckxokuh i)fr | uhcw dk iM dh of) | | | vr% Qlyk dh mit ¼fdxzk@gsDV;j½ | |
|---|---|---|---|---|---|
| | Åapkbz ¼l-eh-½ | ruk dh eksVkbz ¼l-eh-½ | Qyko ¼-eh-½ | nkuk | Hkwlk |
| नीबू–मूंग | – | – | – | 343.7 | 1006.0 |
| नीबू–सरसों | 278.8 | 35.8 | 10.69 | 817.6 | 2402.0 |
| नीबू–इसबगोल | 285.8 | 44.8 | 16.65 | 346.0 | 640.2 |
| नीबू–जीरा | 477.8 | 45.1 | 11.95 | 350.0 | 540.2 |
| बिना अन्तः सस्यन | 272.4 | 38.4 | 9.22 | – | – |
| सी.डी. (5%) | 32.1 | 4.77 | 2.41 | | |

**rkfydk 2% df"k ckxokuh i)fr dh mRikndrk ,oa Qy eki ¼9 os o"kZ½**

| df"k ckxokuh i)fr | uhcw dh mit ¼fdxzk@gsDV;j½ | ljlks lerqY; mRiknu ¼fdxzk@gsDV;j½ | uhcw lerqY; mRiknu ¼fdxzk@gsDV;j½ | dqy Ø; #- |
|---|---|---|---|---|
| नीबू–मूंग–सरसों | 921.30 | 4932.17 | 2170.06 | 108507.7 |
| नीबू–मूंग–इसबगोल | 771.45 | 3831.86 | 1686.00 | 84300.0 |
| नीबू–मूंग–जीरा | 389.61 | 2631.28 | 1157.76 | 57888.0 |
| औसत | 694.12 | 3798.04 | 1171.21 | 66830.1 |
| नीबू बिना अन्तः सस्यन | 332.05 | 754.54 | 332.05 | 16625.0 |

uhcw Qyks ls ynk iM

uhcw dk ifjiDo Qy

# e`nk xq.koRrk izcU/ku % fVdkÅ [ksrh ds fy, vko';d

पश्चिमी राजस्थान की मृदा में प्रमुखतः वायु अपरदन, कार्बनिक कार्बन का कम होना, लवणीकरण, सुखा आदि समस्याएं हैं। अतः इन समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि टिकाऊ कृषि व मृदा के स्थापित्व हेतु मृदा गुणवता को बनाये रखा जाये ताकि परिस्थितिकी में सामंजस्य बना रहे। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति हेतु यह आवश्यक है कि उत्पादन में समान्तर बढ़ोतरी हो किन्तु सीमित भू–संसाधनों से उत्पादन अधिक लेने पर मृदा गुणवता में निरन्तर गिरावट होती जा रही है। मृदा का समुचित प्रबंधन न होने की अवस्था में मृदा के पोषक तत्वों एवं मौलिक अवस्था में गिरावट आ जाती है। विश्व स्तर पर मृदा के समक्ष कई चुनौतियाँ है, अतः मृदा के टिकाऊ प्रबन्धन की गहरी आवश्यकता है।

बढ़ती आबादी और घटती भूमि की ऑख मिचोली सदियों से चली आ रही है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक भूमि की तलाश में जंगल और पर्वत काटता चला जाता है जिसके कारण खेती योग्य भूमि की कमी और उपलब्ध भूमि का ह्रास होता चला जा रहा है। निम्नांकित तालिका में मानव समाज द्वारा मृदा के समक्ष प्रदत्त चुनौतियों को दर्शाया गया है।

पश्चिम राजस्थान की मृदा में वायु अपरदन, कार्बन का कम होना, लवणीकरण, सुखाग्रस्त होना आदि समस्याएं है। अतः इन समस्याओं को मध्य नजर रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि टिकाऊ कृषि व मृदा के स्थायित्व हेतु मृदा गुणवता को बनाये रखा जाए ताकि परिस्थितिकी में साम्यता बनी रहे।

मृदा गुणवता के दो घटक (मौलिक एवं गतिशील गुण) हैं। मौलिक मृदा गुणवता घटक से तात्पर्य मृदा में उपस्थित उन मूल भूत गुणों से है जो कि पादप वृद्धि में सहायक होते हैं व उपज को प्रभावित करते हैं। मौलिक गुण प्रायः परिवर्तनशील नहीं होते व समय के सापेक्ष इनमें बहुत ही कम बदलाव होता है। मृदा गठन व मृदा खनिजिकी यह मौलिक गुण है जो उपज को प्रभावित करते हैं। क्षेत्रानुसार मृदा कार्बन, घनआयन विनिमय क्षमता, विनिमय सोडियम प्रतिशत होता है, जिनको लम्बे समय तक मृदा प्रबंधन कर बदला जा सकता है। मृदा के मौलिक गुण भू–उपयोग क्षमता को निर्धारित करने के मुख्य घटक हैं जो कि मृदा/भू–उपयोग योजना को निर्धारित करने में सहायक होते है ।

मृदा के गतिशील गुण वे हैं जो सीमित समय में मानव द्वारा उपयोग व प्रबंधन अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं। कृषि सन्दर्भ में यह गुण मृदा में उच्च पोषक स्तर बनायें रखते हैं व मृदा में उचित/पर्याप्त मृदा वायु व अंतः स्रवण के साथ मृदा जीव विविधता को भी बनाए रखते हैं। प्रायः मृदा गुणों की परिवर्तनशीलता मृदा स्वास्थ्य को दर्शाती है, मृदा गुण किसी परिस्थिति में मृदा के मानों का समूह है जो कि भविष्य में बदलाव को विश्लेषित कर सकता है। मृदा गुणवता का आकलन मृदा प्रबंधन संकाय की सतता को ज्ञात करने हेतु आवश्यक है। विशिष्ठ परिस्थितियों में अन्य मृदा गुणों को भी सूचक रुप में स्थापित किया जा सकता है। उदाहरण हेतु विनिमय सोडियम प्रतिशत, सुक्ष्म पोषकतत्व का स्तर, जीवनाशक अवशेष व भारी धातु प्रदूषक इत्यादि।

मृदा गुणवता व मृदा उत्पादकता भी घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, मृदा की उत्पादकता मृदा क्षरण, अल्प पोषक स्तर, लवणीकरण,

**rkfydk 1% ekuo lekt }kjk iznÙk fo'o Lrj ij e`nk ds le{k pqukSfr;k**

| pqukSfr;k | ifjorZu dh nj | pqukSfr;k | ifjorZu dh nj |
|---|---|---|---|
| विश्व की जनसंख्या | + 1.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष | प्रतिव्यक्ति उपजाऊ क्षेत्र | 0.78 प्रतिवर्ष |
| खाद्य असुरक्षा | –1.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष | वायुमण्डल में हरितगृह गेस में | प्रतिशत प्रतिवर्ष |
| | | कार्बनडाइ ऑक्साइड | + 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष |
| मृदा क्षरण | + 5.10 मिलियन प्रतिवर्ष | मिथेन | + 0.75 प्रतिशत प्रतिवर्ष |
| प्रतिव्यक्ति सिंचित क्षेत्र | –1.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष | नाइट्रिक ओक्साईड | + 0.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष |

**rkfydk 2½ e'nk xq.koŸkk lqpd ÄVd**

| e'nk xq.k | Tkkudkjh |
|---|---|
| मृदा गठन | जल धारण एवं स्थानान्तरण, पोषकतत्व व रसायन की उपस्थिति, उपरदन संवेरन–कार्बन पदार्थ का स्थायित्व एवं मृदा संरचना |
| सतही मृदा एवं जड़गीराई | जल व पोषक तत्व उपलब्धता |
| स्थूल घनत्व | संरन्ध्रता एवं संघनन |
| मृदा जल | उपलब्ध जल |
| जल धारण क्षमता | जल व वायु उपलब्धता, जल धारण एवं स्थानान्तरण, रसायनिक पदार्थ की उपस्थिति |
| पी.एच. | मृदा का अम्लीय एवं क्षारिय होना |
| विद्युत संचालकता | घुलनशील लवण की उपस्थिति व मात्रा |
| उपलब्ध नत्रजन फॉस्फोरस, पोटेशियम, कार्बनिक कार्बन | उपलब्ध पोषकतत्व व कार्बनिक पदार्थ की मात्रा |
| मृदा स्वशन | मृदा कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता |
| सुक्ष्मजीवी जैवमास | सुक्ष्मजीवों की उपस्थिति |

**rkfydk 3½ LFkk;h d`f"k ic/ku gsrq uhfr;ka o buls iHkkfor e'nk xq.kork o i;kZoj.k LokLF; lwpd**

| fVdkÅ uhfr;k | lwpd |
|---|---|
| 1. मृदा का कार्बनिक पदार्थ नत्रजन व कार्बन के स्तर को उपयुक्त रखकर जुताई को सीमित रखकर व पौधे व पशुखाद को पुर्नउपयोग कर कार्बनिक पदार्थो को सरंक्षित करना। | कार्बनिक पदार्थ स्तर में समय के सापेक्ष बदलाव (सुदूर संवेदी व रासायनिक विश्लेषण द्वारा) |
| 2. मृदा उपरदन को रोकना/कम करना संरक्षण जुताई द्वारा व मृदा को ढककर रखना | सतही मृदा को (सतह मृदा की गहराई कार्बनिक सतह पदार्थ, गठन अन्तः स्त्राव) |
| 3. मृदा के प्राप्त उपज व पर्यावरण में सामन्जस्य स्थापित कर संरक्षण व एकीकृत प्रबंधन द्वारा (उपयुक्त जुताई, अवशेष, जल व रसायन उपयोग) एवं वर्ष में फसल आवश्यकता अनुसार नत्रजन व फॉस्फोरस स्तर को उचित रखकर । | फसल सम्बन्धी गुण (पोषक तत्व, जड़ प्रकार संवेदी द्वारा उपज) मृदा की भौतिक स्थिति, सुदूर संघनन मृदा व जल का नाइट्रेट स्तर उपयोग की गई जीवनाशक की मात्रा। |
| 4. जीवाश्म ईंधन व पेद्रो रसायन पर निर्भरता में कमी लाकर व परम्परागत संसाधनों का बेहतर उपयोग करके, स्वीकृत पोषकतत्व प्रबंधन स्वीकृत कीट प्रबंधन, फसल चक्र। | लागत एवं उर्जा का आकलन |

क्षारीकरण संघनन आदि जैसी प्रक्रिया द्वारा भी नकारात्मक रुप से प्रभावित होते है। मृदा प्रबंधन विधियों द्वारा उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रभाव को मृदा गुणों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

उर्वरक प्रबंधन फसल चक्र, जल प्रबंधन आदि मृदा गुणवता को सार्थकरुप से प्रभावित करते हैं। अमोनिया युक्त उर्वरक के निरन्तर उपयोग से व नाइट्रेट नत्रजन के निक्षालन होने से अम्लीकरण द्वारा मृदा गुणवता प्रभावित होती है। फसल चक्र द्वारा उपयोग में लाई गई मृदा सतह बदलने से व विभिन्न प्रकार की जड़ों के आधार पर फसल चक्र में शामिल करने से मृदा अपरदन कम होता है साथ ही, मृदा गुणवता पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। वर्षा आधारित खेती वाले क्षेत्रों में अच्छी मृदा गुणवता का आशय उसकी भौतिक अवस्था से है जिसमें निक्षालन कम होता है व अन्तः स्रवण अच्छा होता है। सिचिंत क्षेत्रों में इसकी उर्वरता जल गुणवता व सिंचाई प्रबंधन पर निर्भर करती है। अम्लीय मृदा में चूना मिलाकर व क्षारिय मृदा में जिप्सम मिलाकर मृदा गुणवता व उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

अतः टिकाऊ खेती व मृदा प्रबंधन हेतु आवश्यक है कि उपरोक्त नीतियों को वर्तमान कृषि में अपनाया जाये। इससे मृदा संसाधन संरक्षित रहते हैं जिनसे सतत उत्पादन लिया जा सकता है। इन उपायों से पर्यावरण में एक सामंजस्य स्थापित होगा, जो भविष्य में मानव समाज की ओर से प्राप्त चुनौतियों के समक्ष टिका रहेगा और बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में सक्षम बनेगा।

सीमा भारद्वाज, बीरबल, एम.एल. सोनी, एन.एस. नाथावत
एवं वी.एस. राठौड़
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,*
*प्रादेशिक अनुसंधान क्षेत्र, बीकानेर*

# [ktj esa yxus okys e[; dhV ,oa lefdr çcU/ku

खजूर की खेती शुष्क क्षेत्रों में पारंपरिक व्यवसाय है। भारत में गुजरात, राजस्थान और पंजाब में खजूर की खेती पिछले 20 सालों में शुरुआत हुई है। दुनिया भर में खजूर में लगने वाले 50 से अधिक कीट पाये जाते हैं। इनमें से 25 प्रतिशत से अधिक कीट प्रजातियां गंभीर रुप में मानी गई हैं। भारत में इसके मुख्य कीटों के रुप में खजूर का स्केल (पर्लटोरिया ब्लंकार्डी), खजूर का मोथ (बैट्राचेद्रा अमाइड्रैला), रेड पाम ईल्ली (रिंकोफोरस फेरुजिनस) एवं राइनोसेरस बीटल (ओरिक्ट्स राइनोसेरस) आदि को माना गया है। समेकित कीट प्रबंधन (आई पी एम) का उपयोग फलों में 1940 के बाद किया गया। इससे पहले 1800 से 1940 तक कीट प्रबंधन के लिए तैल, साबुन, रेजिंस, पौधों से प्राप्त जहरीले पदार्थ एवं अकार्बनिक योगिक का उपयोग होता था। 1940 के बाद सिंथेटिक कीटनाशकों का व्यापक प्रयोग होने लगा।

कीटनाशकों के बार–बार प्रयोग से कीटों में इनके विरूद्ध प्रतिरोधकता विकसित होने लगती है। इस प्रकार कीटों में प्रतिरोधकता होने से कीटनाशकों का प्रयोग अधिक किये जाने लगा। इससे वातावरण खराब होने के साथ ही, कीटों के प्राकृतिक शत्रु भी नष्ट होने लगे। इन सभी कारणों से समेकित कीट प्रबंधन (आई पी एम) की आवश्यकता पड़ने लगी।

## [ktj esa yxus okys e[; dhV

### 1- [ktj dk Ldsy ¼iyVksfj;k CyadkMh½

स्केल कीट खजूर उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक रूप से मौजूद होता है। यह अल्जीरिया, कुवैत, लीबिया, मॉरिसिनिया, मोरक्को और ट्यूनीशिया में एक गंभीर कीट माना जाता है। खजूर स्केल का प्रकोप दो से आठ साल तक के पौधों में बहुत अधिक पाया जाता है, लेकिन इसके प्रकोप से पौधा मरता नहीं है। इस कीट के व्यस्क एव निंफ पौधे की पतियों का रस चूसते हैं। इसके प्रकोप से पौधे की पतियाँ पीली पड़ जाती हैं। इस कीट का प्रकोप मानसून के आगमन (मई और जून) के दौरान शुरु हो जाता है और नवम्बर व दिसंबर महीनों में विकराल रूप ले लेता है। बीकानेर क्षेत्र में इस कीट की मात्रा 1.10 से 18.77 प्रति सेमी आकी गई है और इसको एक प्रमुख कीट के रूप में माना गया हैं।

### 2- [ktj dk eksFk ¼cSVªkpsæk vekbMsyk½

लेसर मोथ खजूर फलों में लगने वाला एक महत्वपूर्ण कीट है। इसका ठीक से प्रबंधन नहीं करें तो, फलों को 50 प्रतिशत से अधिक हानि हो सकती है। यह संयुक्त अरब अमीरात में खजूर के प्रमुख कीटों में से एक है। राजस्थान में इस कीट से लगभग 16 से 20 प्रतिशत तक नुकसान होता है। इसका प्रकोप खजूर के खेत से शुरू होकर इसके

बाद भंडारण तक फैल जाता है और संग्रहीत/भण्डारित फलों में कई पीढ़ियाँ पूरी करता है। पके हुये फलों में इस कीट का प्रकोप ज्यादा होता है। इसकी सूँडी फलों के गूदे को खाती है। व्यस्क पौधों को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। प्रभावित फल खाने योग्य नहीं रहते हैं।

## 3- jM ike bYyh ¼fjdkQkjl Q#ftul½

इस कीट को भारतीय पाम ईल्ली भी कहते हैं। खजूर में इसका प्रकोप विश्व के मध्य पूर्व क्षेत्र में अधिक माना जाता है। इस कीट का पहला प्रकोप 1980 से 1992 तक मध्य अरब प्रायद्वीप और मिस्र में देखा गया था। भारत में इस कीट का सबसे अधिक प्रभाव गुजरात के कच्छ क्षेत्र में देखा गया है। वयस्क लाल, भूरे रंग के होते हैं। शरीर की लंबाई लगभग 35.12 मिमी होती है जिसके एक तिहाई भाग में सूंड होती है। लार्वा भूरे रंग के सिर के साथ सफेद पीले रंग का होता है। प्यूपा का रंग भूरा–सफेद एवं लम्बाई 15 से 35 मिमी तक होती है। इस कीट का प्रकोप बाहर से दिखाई नहीं देता है। यह खजूर की जड़ों को नुकसान पहुंचा कर उन्हें अन्दर से खोखला कर देता है।

## 4- jkbukl jl chVy ¼vkfjDVl jkbukl jl½

खजूर के पेड़ पर राइनोसेरस बीटल की कई प्रजातियां दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इस कीट का प्रकोप दक्षिणी जॉर्डन घाटी, इजराइल, भारत आदि देशों में पाया जाता है। भारत में इसका प्रकोप गुजरात के कच्छ क्षेत्र में पाया जाता है। वयस्क भृंग चमकदार काले भूरे रंग के साथ 44 से 49 मिमी लंबा व 20 से 23 मिमी चौड़ा होता है। इस कीट की सूँडी पौधे की जड़ों को नुकसान पहुचाती हैं। इसके प्रकोप से पौधा पीला पड़ जाता है, और बाद में सूख जाता है।

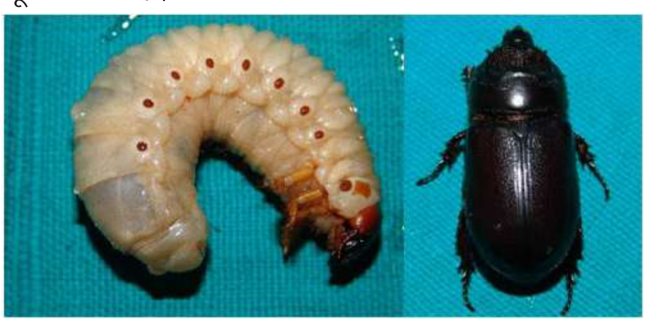

## 5- nhed ¼vkMkVkVel vkcl l½

दीमक या सफेद चींटी जो गर्मी का कीट है, यह उष्णकटिबंधीय और समउष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है। यह जीवित पौधे के अलावा मृत लकड़ी सामग्री आदि को भी खाती है। दीमक के प्रकोप की रेतीली और रेतीली दोमट मिट्टी में अधिक गंभीर समस्या है। यह पौधे की जड़ों को नुकसान पहुचाती हैं और सूखी लकड़ी के पूरे भाग को चट कर जाती है। प्रायः इस कीट से 40– 50 प्रतिशत तक पौधे को क्षति हो सकती है। दीमक पौधों के आंतरिक भाग को 1–2 फीट की ऊंचाई तक खा जाती हैं। यह पौधों के तनों में मिट्टी भर देती हैं। पौधशला और नये पौधों में दीमक से अधिक नुकसान होता है। दीमक के वयस्क की विभिन्न जातियां पाई जाती हैं जैसे सैनिक, कार्यकर्ता, प्रजनन और रॉयल्टी जातियां पाई जाती हैं।

रानी कीट आकार में सबसे बड़ी होती है। इसकी लंबाई पांच सेंटीमीटर तक होती है। इसके पेट की मोटाई अंडों की वजह से अधिक होती है। बाँझ श्रमिक जातियां कॉलोनी के मुख्य श्रम बल का काम करती हैं। दीमक पर मानसून की पहली बौछार के साथ पंख यौन रूप में दिखाई देते हैं। मादा दीमक एक सैकण्ड में एक अंडा देती है और अपना जीवन काल 7 से 10 साल में पूरा करती हैं।

## ,dh—r dhV çc/ku ¼vkbih,e½

एकीकृत कीट प्रबंधन कीट नियंत्रण की एक समग्र प्रक्रिया है जिसके तहत निश्चित प्रबंधन द्वारा कीटों पर नियंत्रण पाया जाता है। खजूर में कीट नियंत्रण के अंतर्गत कीट प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए जैसे – टामोड़ा, बरकावि आदि।

स्केल कीट का नियंत्रण प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा करना चाहिए जैसे कि, प्रिडेटर लेडी बर्ड बीटल, क्राइसोपर्ला, प्रैईंग मेंटिड आदि।

0k;Ld Øk;klkik

edMh

i:bx eMhM

dkDlhuyk lsVeidVkVk

खजूर के लेसर मोथ के नियंत्रण के लिए परासाइरोला स्वीर्स्कीयाना, ब्रेकोन आदि परजीवी का प्रयोग करना चाहिए। राइनोसेरस बीटल, रेड पाम ईल्ली व लेसर मोथ के लिए फेरोमोन का उपयोग एक सबसे अच्छा तरीका है। रेड पाम ईल्ली के लिए घरेलू और अंतरराष्ट्रीय संगरोध निषिद्ध अपनाना चाहिए जिससे कि एक जगह से दूसरी जगह इस कीट का प्रकोप नहीं फैल सके। रेड पाम ईल्ली के नियंत्रण के लिए खजूर के ऑफ–शूट्स निकाल देने चाहिए साथ ही प्रिडेटर, पलेटीमेरिस ओर्यक्ट्स का उपयोग भी करना चाहिए। राइनोसेरस बीटल के व्यस्क को लाइट ट्रेप से भी नियंत्रित कर सकते हैं। पौधों के पास में नेफ्थैलीन बोल्स रख देने से भी बीटल नहीं आते हैं। स्केल कीट के लिए अगस्त माह में ईमीडाक्लोपरीड 17 एस एल का 0.5 से 0.7 मिली./ लीटर पानी के हिसाब से छिडकाव करना चाहिए। रेड पाम ईल्ली व लेसर मोथ के लिए डाइमीथोएट 30 ई सी व मैलाथियोन 50 ई सी का 1.2 से 1.5 मिली./लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। राइनोसेरस बीटल के नियंत्रण हेतु पौधों के तने के आसपास और छिद्र में डाइजीनोन, मोनोक्रोटोफोस आदि रसायनों का प्रयोग करना चाहिए।

---

श्रवण एम हलधर[1], सी.एम. मुरलीधारन[2], शिवराम मीना[3] एवं हेमलता सहल[4]

*[1]वैज्ञानिक (कीट विज्ञान), [2]कीट विज्ञान विशेषज्ञ, खजूर अनुसंधान केन्द्र, भुज (गुजरात), [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), [4]एस आर एफ भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

# e# {ks= esa [kstM+h mRiknu dh çeq[k leL;k,a ,oa mudk lek/kku

थार रेगिस्तान में उगने वाली वनस्पतियों में खेजड़ी का वृक्ष एक अति महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह मरुक्षेत्र के 'कल्पवृक्ष' के नाम से जानी जाती है। यह थार निवासियों की जीवन रेखा कहलाती है। यह दलहन परिवार का फलीदार वृक्ष है जिसका वानस्पतिक नाम *प्रोसोपिस सिनेरेरिया* है। यह भारतवर्ष के विभिन्न भागों में विभिन्न नामों से जानी जाती है, जैसे– दिल्ली क्षेत्र में इसे जाटी के नाम से जाना जाता है, पंजाब व हरियाणा में जॉड़, गुजरात में सुमरी, कर्नाटक में बनी, तमिलनाडू में बन्नी, सिन्ध में कजड़ी एवं राजस्थान में इसे खेजड़ी के नाम से पुकारा जाता है। वेदों एवं उपनिषदों में खेजड़ी को शमी वृक्ष के नाम से वर्णित किया गया है। स्थानीय लोग किसी भी शुभअवसर, त्योहार, विवाह, आदि पर खेजड़ी की सांगरी की सब्जी बनाना उत्तम व शुभकारी मानते हैं। इसकी लकड़ी से ईमारती फर्नीचर भी बनाये जाते है। इसकी लकड़ी ईंधन का मुख्य स्त्रोत है। खेजड़ी राजस्थान राज्य का राज्य वृक्ष भी है।

राजस्थान के थार रेगिस्तान में खेजड़ी के वृक्ष बहुतायत में पाये जाते हैं। मरुस्थलीय जीवन में खेजड़ी एक जीवन रेखा का कार्य करती है। खेत में खेजड़ी वृक्ष का होना भूमि की उपजाऊ शक्ति का द्योतक है। सूखे व अकाल जैसी विपरित परिस्थितियों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता बल्कि ऐसी परिस्थितियों में यह यहां के जन–जीवन की रक्षा करती है। खेजड़ी की पत्तीयां (लूंग/लूम) पशुओं के लिए एक अतिमहत्वपूर्ण पौष्टिक आहार है। इसकी सांगरी (फली) बहुत पौष्टिक व स्वादिष्ट होती है। परिपक्व सांगरियों में औसतन 8–15 प्रोटीन, 40–50 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 8–15 प्रतिशत शर्करा, 8–12 प्रतिशत रेशा, 2–3 प्रतिशत वसा, 0.4–0.5 प्रतिशत कैल्सियम, 0.2–0.3 प्रतिशत लौह तत्व तथा अन्य सूक्ष्म तत्व पाये जाते हैं जो मानव व पशुओं के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही गुणकारी हैं। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रें में पशुपालन का मुख्य आधार है।

खेजड़ी उत्पादन के क्षेत्र को बढ़ावा देने में आ रही प्रमुख समस्याएं

1. खेजड़ी वृक्षों का सूखना ।
2. खेजड़ी वृक्षों की संख्या घटना ।
3. खेजड़ी वृक्ष के संवर्धन की तकनीकी की कमी।
4. खेजड़ी के वृक्ष का सूखना

इन दिनों खेजड़ी के वृक्ष बहुतायत में खड़े–खड़े सूखकर नष्ट हो रहें हैं। इस बाबत वैज्ञानिकों ने इसके कारण खोजने का प्रयास किया और प्रथमदृष्टि में जो कारण सामने आए वे निम्नलिखित हैं:

अ) वर्षा का कम होना, भू–जल स्तर का गिरना और कृषि–मशीनीकरण का बढ़ना

ब) खेजड़ी जड़ छेदक कीड़े एवं दीमक का प्रकोप

स) कवक (फफंदी) संक्रमण, इत्यादि

वर्षा कम होने तथा भू जल स्तर में आई गिरावट के कारण खेजड़ी की जड़ों में पानी कम होता जा रहा है और जड़ क्षेत्र का तापक्रम बढ़ता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में जड़ें कमजोर हो रही हैं और उनकी रोगरोधी क्षमता घट रही है। इस स्थिति में जड़ों पर कई तरह के कवक (फफूंदी) व कीट आक्रमण कर देते हैं। बढ़ते कृषि मशीनीकरण के कारण भी खेजड़ी की जड़ों की प्राकृतिक व्यवस्था को हानि पहुँचती है तथा यह खेजड़ी के सूखने तथा बीमारियों को फैलाने में सहायक का कार्य करता है।

खेजड़ी के बड़े वृक्षों के सूखने के जो प्रत्यक्ष कारण जो सामने आए हैं उनमें जड़ छेदक कीट का प्रकोप एवं कवक (फफंदी) का संक्रमण भी प्रमुख है। खेजड़ी के जड़ छेदक "सेलोस्टर्ना स्काब्रेटोर (कोलियोप्टेरा सिरेम्बाइसिडी)" की लटें इसकी कमजोर जड़ों की छाल में घुस जाती हैं और

जड़ों को खाती हुई उनमें आड़ी–तिरछी सुरंग बना देती हैं। कोमल जड़ों अन्दर ही अन्दर जब ये लटें बड़ी हो जाती हैं तो वे मुख्य जड़ों को खाने लगती हैं और उनमें भी सुरंग बना देती हैं। जड़ें खोखली होने से पेड़ संवहन तंत्र धीरे–धीरे टूटने लगता है। इससे पौधों में भोजन पानी का आवागमन बंद हो जाता है और पौधा धीरे–धीरे सूखने लगता है। अत्यधिक प्रकोप की स्थिति में यह कीट पेड़ के मुख्य तने को भी खोखला करते हुए ऊँचाई तक चले जाते हैं और सम्पूर्ण पेड़ धराशायी हो जाता है। इस जड़ छेदक कीट की लटें 3 से 15 मीटर तक की गहराई तक जमीन एवं जड़ों में आराम से रहती हैं।

मादा कीट जमीन में अण्डा देती है, जिनसे अनुकूल परिस्थितियों में लार्वे निकलते हैं और आगे चलकर लट के रूप में खेजड़ी की जड़ों पर आक्रमण कर देते हैं। लटें बाद में प्रौढ़ मादा में बदल जाती हैं और फिर जमीन व खेजड़ी के पेड़ों की जड़ों में अण्डे देती हैं। इसप्रकार यह क्रम लगातार चलता रहता है।

खेजड़ी के वृक्ष सूखने का तीसरा प्रमुख कारण कवकों (फफूंदों) का खेजड़ी की जड़ों पर संक्रमण है। शोध कार्यों से पता चला है कि खेजड़ी की जड़ों पर आक्रमण करने वाली कवकों की प्रमुख प्रजातियाँ गैनोडर्मा/गाईनोडर्मा, फ्यूजेरियम, रहीजक्टोनिया, आदि हैं। गैनोडर्मा कवक को देशी भाषा में विशखोपरा या भंफोड़ा भी कहते हैं। सितम्बर–नवम्बर माह में खेजड़ी की जड़ों एवं तने के बीच में से छतरीनुमा आकार के भुफोड़ा बनते दिखाई देते हैं जो गैनोडर्मा कवक के संक्रमण के कारण होते है। ये भंफोडे आरंभ में मुलायम होते हैं परन्तु बाद में कठोर एवं चौकलेट रंग के हो जाते हैं। इस कवक के संक्रमण के कारण पौधों के संवहनतंत्र में खराबी होने लगती है और अगले अगस्त–सितम्बर के आते–आते पेड़ की पत्तियाँ पीली पड़ने

[ktMh d laØfer o{k

लगती हैं, और बाद में धीरे–धीरे पूरा पेड़ सूख जाता है। दीमक का आक्रमण भी खेजड़ी के पौधों को सुखाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

### l|j{k.k o mRiknu dk c<kok nus d fy, l|>ko

**¼d½ [ktMh d o{kk dk l|[ku l cpku d mik;%** वर्षा के पानी को अपने खेत में संचय करें। खेजड़ी वृक्ष के तने के चारों ओर थांवला बनाकर पानी का संग्रहण करें। भू–जल को सिंचाई के रूप में काम लेते समय उसका भी बड़ी सर्तकता के साथ सदुपयोग करें। जड़ों में हर सम्भव नमी की मात्र को बनाए रखें। गर्मी के दिनों में खेजड़ी के पेड़ के चारों तरफ बनाए हुए थांवलों को घास–फूस के बिछावन से ढक देना चाहिए ताकि मृदा जल का वाष्पीकरण न हो और जल लम्बे समय तक पेड़ों को मिलता रहे।

**¼[k½ tM Nnd dhV dk fu;=.k %** जड़ छेदक कीट की रोकथाम के लिए वर्षाकालीन दिनों में स्वस्थ्य पेड़ों पर एण्डोसल्फान 35 ई.सी. 4–7 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें ताकि इस कीट के प्रौढ़ भृंग मर जाएं। जड़ों में उपस्थित कीट की लटों, भृंगों, आदि को मारने के लिए पेड़ की जड़ों में क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई. सी. (15–20 मि.ली. प्रति पेड़ के हिसाब से) व कार्बनण्डजिम 20 ग्राम के साथ कॉपर आक्सीक्लोराइड 40–45 ग्राम प्रति पेड़ के हिसाब से पानी में घोलकर पेड़ के चारों ओर डालें। वर्षाकाल में जड़ छेदक कीट के प्रौढ़ भृंगों को प्रकाशपाश या खेतों में आग जलाकर प्रकाश की तरफ आकर्षित करके नष्ट कर दें। सूखे एवं संक्रमित पेड़ों को उखाड़कर जला दें ताकि उनमें उपस्थित कीट एवं कवक नष्ट हो जाए।

[ktMh o{kk e dod idki

lØfer [ktMh iM

**¼x½ dod fu;=.k** कवक से होने वाले संक्रमण अथवा बीमारियों से खेजड़ी के पेड़ों को बचाने के लिए 20 ग्राम बॉवस्टिन तथा 40 ग्राम ब्लाइटोक्स को 20 लीटर पानी में घोलकर पेड़ की जड़ों में ड्रेन्चीग करें। इस प्रक्रिया को हर 15 दिन बाद 2–3 बार दोहरावें। बीजों से खेजड़ी के पौधे तैयार करने की स्थिति में उनको भी बॉवस्टिन या अन्य किसी भी कवकनाशी दवाईयों से उपचारित करके ही बोयें। संक्रमित खेजड़ी को उखाड़ कर जला दें।

**¼?k½ nhed ij fu;=.k** दीमक का प्रकोप होने पर खेजड़ी वृक्ष सूख जाते हैं। इसे रोकने के लिए खेजड़ी के तने पर एक–दो फुट की ऊँचाई तक क्लोरोपाईरिफॉस तथा चूने के घोल का लेप कर दें। भूमिगत दीमक के नियंत्रण के लिए पेड़ के तनों व जड़ों के पास खाई खोदकर उसमें क्लोरोपाईरिफॉस या फोरेट या एन्डोसल्फान 4 प्रतिशत चूर्ण को मिट्टी के साथ मिलाकर खाई में भर दें जिससे कि दीमक या उसकी लटें मर जाए।

**¼p½ [ktMh d o{k dh mfpr NVkbZ** खेजड़ी के वृक्षों की नियमित कटाई–छंटाई करनी चाहिए। इस दौरान 4–5 बड़ी शाखाओं को सुरक्षित छोड़ते हुए छंगाई करनी चाहिए। एक दो वर्ष के अन्तराल पर ही पेड़ की छँगाई करनी चाहिए। वृक्ष के निचले दो तिहाई भाग की छँगाई करनी चाहिए और ऊपर के एक तिहाई भाग को सुरक्षित छोड़ देना चाहिए, जिससे वृक्ष प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन नियमित रूप से बनाता रहे।

शिवराम मीना[1], श्रवण एम. हलधर[2] एवं प्रेम प्रकाश पारीक[3]
[1]*वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि प्रसार),* [2]*वैज्ञानिक (कीट विज्ञान),*
[3]*वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी*
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

# 'k"d {k= e ikni fofo/krk dk egŸo o lj{k.k

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है जिसके अन्तर्गत देश का 10.4 प्रतिशत भू–भाग है। राजस्थान के दो–तिहाई भाग पर ''Fkkj jfxLrku'' है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत जिलों की अर्थव्यवस्था परंपरागत फसलों की अपेक्षा मुख्यतः पशुपालन पर आधारित है। पशुओं के चारे का स्त्रोत पश्चिमी राजस्थान में पायी जाने वाली विभिन्न पादप प्रजातियाँ हैं। इसके अलावा शुष्क क्षेत्र में कई ऐसी पौध प्रजातियाँ है, जिनका परंपरागत औषधि के रुप में कई प्रकार के असाध्य रोगों में उपयोग किया जाता है। एक रिपोर्ट के अनुसार संसार में 80 प्रतिशत लोग कई जटिल बीमारियों के इलाज हेतु औषधीय पौधों को अपने परंपरागत तरीके से उपयोग में लेते हैं।

शुष्क क्षेत्र में पायी जाने वाली इस पादप विविधता (पादप प्रजातियों) का औद्योगिक, ईंधन के रुप में, भोजन के रुप में, सजावटी व साज श्रृंगार का सामान बनाने व कृषि रासायनिक महत्त्व भी है। शुष्क क्षेत्र में पायी जाने वाली कुछ प्रमुख पादप विविधता का संक्षिप्त में वर्णन इस प्रकार है–

| lkekU; uke | okuLifrd uke | mi;kxh Hkkx | mi;kx |
|---|---|---|---|
| बबूल | अर्केशिया निलोटिका | छाल व पत्तियॉ | औषधीय गौंद व चारे के रुपमें |
| अमलताश | केसिया फिस्टुला | छाल | औषधीय, रेशमकृमिपोषक |
| जंगलीजलेबी | पिथेसेलोबियमडल्स | छाल | काष्ठ |
| रवैर | अकेशिया केटेचू | छाल | हाई, औषधीय, गोंद |
| घटबोर | जिजीफस ग्लेबेरिमा | फल | फल खाने योग्य |
| बहेड़ा | टर्मीनेलिया बेलीरिका | फल | औषधीय |
| करौंदा | केरीका केरेन्डस | पत्तिया | फल खाने योग्य |
| मेहंदी | लसोनिया इनर्मिस | पत्तिया | हाई, औषधीय |
| खेजड़ी | प्रोसोपिस साइनेरिया | पत्तिया | फल खाने योग्य, गोंद |
| करपाटा | गारुगा पिनाटा | पत्तिया | औषधीय |
| करंज | पोनगामिया पिन्नाटा | बीज | औषधीय |
| नीम | एजेडिरेक्टा इन्डिका | बीज | औषधीय |
| टुम्बा | सिट्रलस केलोसिंथीस | बीज | औषधीय |
| सत्यानाशी | आर्जीमो मैक्सीकाना | बीज | औषधीय |
| पीलू | साल्वेडेरा ओलियोडीस | बीज | औषधीय |
| रवैराजल | साल्वेडेरा पर्सिका | बीज | औषधीय |
| रतनजोत | जेट्रोफा करकस | बीज | औषधीय |
| हींगोट | बैलेनीट्स ऐजीप्टीका | बीज | औषधीय |
| कुमटा | अकेशिया सेनेगल | बीज | टेनिन, औषधीय |
| बील | एइगल मारमेलस | बीज व फल | औषधीय, फल खाने योग्य |
| सालर | बोसवेलिया सेरेटा | बीज | औषधीय |
| चिरोंजी | बुकनानिया लेटीकोलिया | बीज | बीज खाने योग्य |
| गुगल | कोमीफेश विगटाई | बीज | औषधीय |
| सुबबुल | लयूसीनाल्य कोसीफेला | बीज व तना | जलाने की लकड़ी, चारकोल |
| खिरनी | रिगटीया टीन्कटोरिया | फल | औषधीय |

| lkekU; uke | okuLifrd uke | mi;ksxh Hkkx | mi;ksx |
|---|---|---|---|
| अनार | प्यूनिका ग्रेनेटम | जड़ | फल खाने योग्य |
| आक | केलोट्रोपिस प्रोसेरा | छाल | औषधीय |
| खींप | लेप्टाडीनिया पाइरोटेक्नीका | तना | औषधीय फल खाने योग्य |
| रामबास | अगेव अमेरीकाना | पत्तियां | औषधीय |
| सेनिया | क्रोटीलेरिया बुरहिया | तना | व्यर्थभूमिसमूहकरण |
| बेर | जिजीफस मोरीटीआना | फल व पत्तिया | लाख कृमिपोषक |
| पीपल | फाइकस रिलीजियोसा | पत्तिया | लाख कृमिपोषक |
| टीमरु | डायोस्पाइरस मेलानोक्सिलॉन | पत्तिया | बीड़ीपते |
| खस | वेटीवेरिया जिजानियोड्स | सुगन्धीतपदार्थ | सुगन्धितपदार्थ |

## Ikkni fofo/krk dk laj{k.k dh vko';drk

**1- c<+rh gqbZ ekuo vkcknh %** मानव जनसंख्या और शुष्क क्षेत्र में पायी जाने वाली पादप प्रजातियों का ईधन, काष्ठ और अन्य दूसरे उत्पादों के प्रयोग हेतु अंधाधुंध दोहन ने इन पादप प्रजातियों को बहुत भयंकर रुप से प्रभावित किया है। फलस्वरुप कई बहुमूल्य पादप और प्रजातियां संकटग्रस्त श्रेणी में आ गयी हैं या विलुप्त हो गयी हैं।

**2- c<+rh gqbZ Ik'kq tula[;k :** मानव जनसंख्या में बढ़ोतरी के साथ–साथ पशुओं की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई है। परिणामस्वरुप, पशुओं की शुष्क क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक चराई ने भी पादप आनुवंशिकी स्त्रोतों को प्रभावित किया है। जहाँ एक तरफ अधिक चराई से इन क्षेत्रों में पादप प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं वही दूसरी तरफ इन क्षेत्रों में भूमि उर्वरा शक्ति भी घटती जा रही है। अधिक पशुओं के विचरण से भूमि का अपरदन हो रहा है तया उपजाऊ भूमि रेगिस्तान में परिवर्तित होती जा रही है।

**3- ouk o pkjkxkg Hkwfe ¼xkspj½ dk Qly fo'ks"k dh cqokbZ gsrq mi;ksx %** बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अधिक आमदनी प्राप्त करने हेतु चरागाह व वनभूमि का मनुष्य फसल विशेष की बुवाई हेतु उपयोग कर रहा है। जिससे चारागाह भूमि का अतिक्रमण हो रहा है एवं शुष्क क्षेत्र पायी जाने वाली पादप विविधता पर दबाव बढ़ा है।

**4- [kfut nksgu] vkS|ksfxdhdj.k vkSj 'kgjhdj.k %** शुष्क क्षेत्र में पाये जाने वाले पादप आनुवंशिकी स्त्रोतों और वनों के आस–पास खनिज दोहन, इन क्षेत्रों में पादप प्रजातियों के घटने के प्रमुख कारणें में से एक है। शुष्क क्षेत्र में पायी जाने वाले पादप आनुवंशिकी स्त्रोतों के अवशोषण के अन्य कारण सड़क, निर्माण, शहरीकरण और औधोगिक ईकाइयों का इनके आसपास और इन क्षेत्रों में स्थापित करना है।

अतः शुष्क क्षेत्रों में पादप विविधता का संरक्षण आज अति आवश्यक है।

शेषनाथ मिश्रा[1] और दिलीप कुमार समादिया[2]
*[1]एस आर एफ, [2]प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी)*
*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

rqEck ¼flVªyl dksykslkFkhl½

lR;kuk'kh ¼vftZeksu efDldkuk½

[kstM+h ¼ikslksfil flusfj;k½

ekdks; ¼lksyue fuxze½

djkSnk ¼dSfjlk djMl½

/kke.k ?kkl ¼lsadjl lsfVtjl½

vkd ¼dsyksVªksfil izkslsjk½

# fd’kkj voLFkk ¼tqoukby½ Mk;fcfVt jkfx;¨ grq *iks"kd Mk;fcfVd vkVk dk fodkl*

जुवेनाइल डायबिटिज एक ऐसा रोग है जिसमें शरीर में इन्सुलिन अत्यंत अल्प मात्रा में या बिल्कुल ही नही बनता है, जिससे रक्त में शुगर की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। भारत में इसके निरंन्तर बढ़ते रोगियों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अन्वेषण के द्वारा पोषक डायबिटिक आटे को विकसित किया गया। शरीर में रक्त शर्करा नियंत्रण हेतु विकसित पोषक डायबिटिक आटे के लिए निम्न ग्लाइसीमिक सुचकांक (जी आई) खाद्य पदार्थ जैसे जई, जौ, सोयाबीन, चना तथा देशी बबूल के बीज का चयन किया गया तथा इन सभी खाद्य पदार्थों को प्रसंस्करित कर विभिन्न संयोजन बनाये बये। निम्न जी, आई, आटे के विभिन्न संयोजनों के संवेदी मुल्यांकन का मान 'थोड़ा पसंद है' से "बहुत पसंद आया" की क्षेणी में पाया गया। इन संयोजनों में से एलजीएफ$_5$ (पोषक डायबिटिक आटा) नाम दिया गया, का अनुपात क्रमशः 45:30:10:10:1.5 (जई, जौ, सोयाबीन, चना तथा देशी बबूल) था, बाकी सभी के संयोजनो से बेहतर पाया गया। संवेदी मुल्यांकन के संकेत के अनुसार पोषक डायबिटिक आटे को स्वादाकार परीक्षण के द्वारा रंग, उपस्थिति, खुशबु, दिखावट एवं स्वाद के संदर्भ में स्वीकृति मिली।

हमारे देश में भी मधुमेह बडी संखा में लोगों को ग्रसित करता हुआ दिनों–दिन तेजी से पाँव पसारता हुआ जा रहा है। मधुमेह एक ऐसा रोग है जिसमें रक्त में सूगर की मात्रा काफी बढ़ जाती है। यह रोग विश्वभर में व्यापक आकार ले चुका है। भारत में 61.3 मिलियन लोग डायाबिटिज से पीडित है। इसमें से लगभग 1 मिलियन बच्चों को जुवेनाइल डायबिटिज (जिसे टाईप–1 डायबिटिज भी कहते हैं) है। यह संख्या 2030 में बढ़कर 10.12 मिलियन हो जायेगी (आईडीएफ–2011) ।

जुवेनाइल डायबिटिज एक स्वक्षम रोग है जिसमें इन्सुलिन अल्प मात्रा में या बिलकुल ही नही बनता। बच्चों और युवाओं में अक्सर यह रोग पाया जाता है। वृद्धों को भी यह हो सकता है। यह स्वक्षम रोग उस स्थिति में उत्पन्न होता है, जब संक्रमण में विरूद्ध कार्य करने वाली शरीर की रोग प्रतिरक्षा प्रणाली (इम्यून सिस्टम) इन्सुलिन बनााने वाली कोशिकाओं के विरूद्ध ही कार्य करने लगता है। (क्रान्स एवं अन्य 2007) ओर उन्हें नष्ट कर देती है। इस स्थिति में पेंक्रियाज अत्यंत अल्प मात्रा में या बिल्कुल भी इन्सुलिन नही बनाती है, जिससे शरीर में रक्त सर्करा का स्तर बढ़ जाता है। रक्त में एक विशेष स्तर पर शर्करा के विद्यमान रहने पर हमारा शरीर अपने सर्वोत्तम रुप में कार्य करता है। यदि हमारे खून में शर्करा की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है, तो विशेष रुप से अस्वस्थ महसूस करने लगते हैं। अगर यह स्थिति असामान्य इसी प्रकार से बनी रहे तो विभिन्न प्रकार की जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं –जैसे डायबिटिक नेफरोयेथी, रेटिनोपेथी, न्युरोपेथी, मधुमेहजन्य पाँव के रोग, ह्रदय रोग आदि। जुवेनाइल डायबिटिज से पीड़ित रोगियों को जीवित रहने के लिए प्रतिदिन इन्सुलिन लेना पड़ता है। इन्सुलिन की सही मात्रा लेने के साथ–साथ निम्न ग्लाइसीमिक सुचकांक (जीआई) तथा उच्च फाइबर युक्त आहार का भी सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। किसी आहार में क्लाइसीमिक सुचकांक खाद्य रक्त में शर्करा स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाता है। निम्न जीआई युक्त खाद्य पदार्थ अधिक धीमी गती से पचाये तथा अवशोषित किये जाते हैं जिससे रक्त शर्करा का स्तर शरीर में धीरे धीरे बढ़ता है। इसलिए मधुमेह (डायबिटिज) रोग में उत्पन्न होने वाली विभिन्न जटिलताओं से बचने के लिए तथा रक्त में शर्करा के स्तर को सामान्य रखने के लिए पोषक डायबिटिक आटे का निमार्ण किया गया है ।

## lkexh ,o ijh{k.k fof/k

वर्तमान अध्ययन हेतु निम्न जीआई आटे के मानकीकरण के लिए विभिन्न प्रकार के निम्न जीआई युक्त खाद्य पदार्थ जैसे जई (केंट), जौ (आरडी 57), सोयाबीन (एनआरसी

37) और चना (के 850) को बीज केन्द्र एस,के,आर,यू, बीकानेर तथा देशी बबूल को बीकानेर शहर के स्थानीय बाजार से अप्रैल–मई के महिने के दौरान खरीदा गया।

## [kk| inkFkk dk i:lLdj.k

जीआई आटे के निमार्ण के लिए चयनित खाद्य पदार्थों को विभिन्न प्रंसस्करण विधियों द्वारा प्रसंस्कृत किया गया। जिसे फ्लो चार्ट 1 में प्रदर्शित किया गया है। यह रक्त में शर्करा का स्तर पर पढ़ने वाले प्रभाव को दर्शाता है।

## fuEu thvkbZ vkVs dk fuek.k

दालें हमारे भोजन में प्रोटीन का प्रमुख स्त्रोत हैं। अनाज व दाल के संयोग से प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है। इस प्रकार विभिन्न अवयवों को ध्यान में रखते हुए निम्न जीआई आटा विकसित करने के लिए सभी चयनित प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों को अलग–अलग अनुपात में मिलाया गया, जो कि एकल अनाज की तुलना में बेहतर जैविक मूल्य प्रदान करता है (तालिका–1) ।

**¶yk pkV&1**

| tb] tk] puk nky | lk;kchu | n'kh ccy |
|---|---|---|
| अशुद्धि को निकाल लें<br>↓<br>धोना<br>(पानी से भरी बाल्टी से साफ करें)<br>↓<br>सुखाना<br>(पोलेथिन पर बिछा कर धूप में 3–4 दिन तक सुखाए)<br>↓<br>पीसना<br>↓<br>छानना<br>↓<br>पेकिंग | अशुद्धि को निकाल लें<br>↓<br>भिगोना<br>(5–7 घन्टे साफ पानी में)<br>↓<br>अकुरण<br>(सूती कपड़े में 48–72 घन्टे 27–3$^{0}$ से. पर रखें)<br>↓<br>सुखाना<br>↓<br>छानना<br>↓<br>पेकिंग | अशुद्धि को निकाल लें<br>↓<br>पीसना<br>(मिक्सी में पीस लें)<br>↓<br>ओवन को 140$^{0}$से. पर 10 मिनट के लिए गर्म करें<br>↓<br>20 ग्राम बबूल पाऊड़र को ओवन में 1 घन्टे के लिए रखें<br>↓<br>प्रति 20 मिनिट के अन्तराल पर उसे हिलाए<br>↓<br>1 घन्टे बाद बबूल पाऊड़र को ओवन से बाहर निकालकर 10–12 मिनिट के लिए ठंडा करें<br>↓<br>पेकिंग(पॉलिथीन में पेक कर लें) |

**Rkkfydk&1 fofHkUu fuEu Xykblhfed vkVs ¼th,Q½ ds vuqikr**

| uke | [kk| inkFk ifr'kr vuqikr | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | tÃ | tk | Lkk;kchu | puk nky | n'kh ccy |
| एल जी एफ 1 ए | 37.5 | 37.5 | 10 | 10 | 1.5 |
| एल जी एफ 1 बी | 37.5 | 37.5 | 15 | 5 | 1.5 |
| एल जी एफ 1 सी | 37.5 | 37.5 | 5 | 15 | 1.5 |
| एल जी एफ 2 ए | 35 | 40 | 10 | 10 | 1.5 |
| एल जी एफ 2 बी | 35 | 40 | 15 | 5 | 1.5 |
| एल जी एफ 2 सी | 35 | 40 | 5 | 15 | 1.5 |

| uke | [kk| inkFkZ ifr'kr vuqikr | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | tÃ | tk | Lkks;kchu | puk nky | n'kh ccy |
| एल जी एफ 3 ए | 40 | 35 | 10 | 10 | 1.5 |
| एल जी एफ 3 बी | 40 | 35 | 15 | 5 | 1.5 |
| एल जी एफ 3 सी | 40 | 35 | 5 | 15 | 1.5 |
| एल जी एफ 4 ए | 30 | 45 | 10 | 10 | 1.5 |
| एल जी एफ 4 बी | 30 | 45 | 15 | 5 | 1.5 |
| एल जी एफ 4 सी | 30 | 45 | 5 | 15 | 1.5 |
| एल जी एफ 5 ए | 45 | 30 | 10 | 10 | 1.5 |
| एल जी एफ 5 बी | 45 | 30 | 15 | 5 | 1.5 |
| एल जी एफ 5 सी | 45 | 30 | 5 | 15 | 1.5 |

## ifj.kke ,o foopuk

विभिन्न अनुपात में मिलाया गए प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का निर्णायक मंड़ल द्वारा संवेदी मुल्यांकन किया गया। विकसित संयोजनों को निर्णायक मंड़ल द्वारा 9 अंक के हेडोनिक पैमाने पर संवेदी मुल्यांकन का मान 'थोड़ा पसंद है' से "बहुत पसंद आया" की क्षेणी में पाया गया। परिणाम द्वारा यह स्पष्ट होता है कि संयोजनों में से एल.जी.एफ. 5 (जिसे की पोषक डायबिटिक आटा नाम दिया गया) का अनुपात 45:30:10:10:1.5 था, बाकी सभी खाद्य पदार्थो के संयोजनों से बेहतर पाया गया। चयनित पोषक डायबिटिक की तुलना गेहूँ के आटे से की गयी और संवेदी मुल्यांकन द्वारा स्वीकार्य पाया गया।

उपरोक्त परिणामों को देखते हुए यह निष्कर्ष सामने आता है कि पोषक डायबिटिक आटा निम्न जीआई खाद्य पदार्थ से यूक्त है। यह रक्त में शर्करा का स्तर गेहूँ के आटे की अपेक्षा कम रखने में सहायक है । डायबिटिक रोगियों द्वारा इसके निरन्तर इस्तेमाल से डायबिटिक रोग से जुड़े हुए लक्षणों से भी निजात पाया जा सकता है।

स्वाति यादव एवं विमला डूकवाल
*खाद्य एवं पोषण विभाग, गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

## *ek Hkkjrh*

कमल की गंध से सुवासित, देवी का वरद हस्त पाकर
निज भारती का उन्नत भाल किया।
मधुरता और प्रांजलता से आप्लावित हो,
मां सरस्वती का श्रृंगार किया।।
लालित्य पूर्ण दिव्य गुणों को समाहित कर,
ज्ञान की भागीरथी को विकीर्ण किया।
गुरू के गौरव पद पर आसीन होकर,
सहज सुरभ्य शांत पथ का आश्रय लिया।।
प्यार से पुष्पों को पल्लवित और प्रफुल्लित कर,
परिपक्व बना, सौम्यता से अभिमण्डित किया।
तारक से झिलमिल, प्रांगण के प्रिय अंक को,
निज प्रज्ञा से प्रभासित किया।।

iHkk [k=h
पूर्व प्रधानाध्यापिका
केन्दीय विद्यालय क्रमांक–1,
बीकानेर

# oehZ dEiksLV

आने वाले वर्षो में भारतीय कृषि को अधिक सुदृढ़ और टिकाऊ बनाने के लिये हमें जैविक खादों के प्रयोग पर बल देना होगा। जैसा कि विदित है कि रसायनिक खादों और कृषि रसायनों के उपयोग से कृषि पैदावार में बढ़त तो अवश्य हुई है लेकिन इनके कई दुष्परिणाम भी सामने आये हैं। मृदा उर्वरता में ह्रास, फसलों में नाशीजीव की बढ़ती मात्रा तथा जल प्रदूषण जैसी समस्याएं विकट रूप धारण करती जा रही है। इन समस्याओं से निपटने के लिये जैविक खादों के प्रयोग पर और अधिक बल देना होगा। प्रायः यह पाया जाता है कि हमारे किसान भाई पशुओं से प्राप्त होने वाले गोबर एवं कृषि अवशेषों की एक बड़ी मात्रा को जला देते हैं जिसकी वजह से इस महत्वपूर्ण जैव सम्पदा का क्षय हो जाता है। विश्व में जैविक खेती के ऊपर पिछले 8 से 10 वर्षो से बहुत जोर दिया जा रहा है। अनुमानतः लगभग 100 करोड़ डालर के जैविक खाद्य पदार्थो का व्यापार प्रति वर्ष होता है। जैविक खाद्य पदार्थ चूंकि स्वास्थ्य के लिये उत्तम होते हैं इसलिए विश्व बाजार में इनकी मांग तेजी से बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2006 तक करीब 1000 करोड़ डालर का विश्व व्यापार इन खाद्य पदार्थो का होगा। भारत वर्ष में जैविक खेती की बहुत सम्भावनाएं हैं और चूंकि जैविक खाद पदार्थ सामान्य खाद्य पदार्थों के मुकाबले कई गुना अधिक दामों पर बिकते हैं, अतः जैविक खेती को अपनाकर आमदनी बढ़ायी जा सकती है।

सदियों से केचुएं भूमि को पोली (हवादार) तथा उपजाऊ बनाते आ रहे हैं, किन्तु यह क्रिया पर्याप्त न होने से खेती को विशेष लाभ नहीं हुआ। हमारे देश में केचुओं की अनेकों प्रजातियां पाई जाती हैं। जिनमें से कुछ लाभकारी तथा उपयोगी हैं। वर्षा के दिनों में केंचुए जगह–जगह रेंगते पाये जाते हैं जो वर्मी कम्पोस्ट के लिए लाभकारी नहीं हैं।

## oehZdEiksLV ds fy, dsapq, dk pquko

हमारे देश में वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए केंचुओं की कुछ प्रजातियां जैसे युड्रिलस यूजेनी, आइसीनिया फोटिडा तथा पेरियोनिस आदि को काम में लाया जाता है। आइसीनिया फोटिडा जिसे लाल केंचुआ या सीवेज केंचुआ के नाम से जाना जाता है वर्मीकम्पोस्ट के लिए ज्यादातर प्रयोग में लाया जाता है। यह केंचुआ अन्य केंचुओं की तुलना में आसानी से पाला जा सकता है, कम समय में ज्यादा संर्वधन तथा कम्पोस्ट देता है तथा इसका रख–रखाव भी सरल है। भारत के अलावा अनेक विकसित देशों में भी इस प्रजाति से वर्मीकम्पोस्ट व्यवसायिक तौर पर मशीनों की सहायता से तैयार की जा रही है।

## dsapvk dk Hkkstu

केंचुआ एक द्विलिंगी जीव है जो अन्धेरे में व रात में क्रियाशील रहता है। यह फसल के अवशेष, घास–फूंस, कूड़ा–कचरा, गोबर, बची हुई शाक–सब्जियां, फल–फूल आदि खाकर उसे वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित करता रहता है तथा अपनी संख्या बढ़ाता रहता है। औसतन एक केंचुआ एक ग्राम वजन का होता है और एक ग्राम कम्पोस्ट 24 घंटे में निकालता है। एक वर्ग मीटर में बनी क्यारी में लगभग एक हजार केंचुए डालने पर प्रतिदिन एक किलो ग्राम वर्मीकम्पोस्ट बनेगी। इस प्रकार ढाई से तीन माह में पूरी क्यारी कम्पोट में बदल जाएगी तथा केंचुओं की संख्या भी कई गुना बढ़ जाएगी। केंचुए की प्रजनन क्रिया मार्च से सितम्बर माह तक रहती है।

dsapq,

## dpq, ikIr djus dk LFkku

आइसीनिया फोटिडा प्रजाति का केंचुआ दिल्ली में सरकारी संस्थानों (जैसे डिप्टी डायरेक्टर, हार्टीकल्चर, दिल्ली सरकार, मोरी गेट, दिल्ली व कीट विज्ञान संभाग, पूसा संस्थान, नई दिल्ली–12) तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों व गैर सरकारी संस्थान आदि से खरीदे जा सकते हैं।

## oehdEikLV d fy, D;kjh cuku dh fof/k

वर्मीकम्पोस्ट के लिए क्यारियां किसी भी छायादार स्थान के नीचे कच्ची या पक्की भूमि पर बनाई जा सकती है। इसकी लम्बाई व चौड़ाई अपनी आवश्यकतानुसार छोटी या बड़ी हो सकती है। इसे प्लास्टिक की ट्रे लकड़ी के बक्से आदि किसी बर्तन में भी रसोई या किचन गार्डन के अवशेषों के हिसाब से बना सकते हैं। प्रत्येक क्यारी की निचली सतह पर 1 से 2 इंच बालू या रेतीली मिट्टी बिछाएं। इसके ऊपर 3 से 4 इंच गेहूँ या चावल का भूसा बिछायें। उसके ऊपर 8 से 12 इंच तक गोबर (15 से 30 दिन पुराना) बिछाएं तथा एक हजार केंचुए (कम से कम) उस पर डाल कर उस क्यारी को बोरी या टाट से ढ़क दें तथा फववारे से अच्छी तरह पानी दें लेकिन नमी 60 प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो। पानी का छिड़काव जाड़े में एक बार तथा गर्मियों दो या तीन बार बोरी पर करें। छोड़े हुए केंचुए अपने आप क्यारी के अन्दर चले जाएंगे। बोरी हटाकर 8 से 12 इंच ऊपर तक वर्मीकम्पोस्ट बनाने वाली सामग्री को डाल कर बोरी से दोबारा ढक दें तथा नित्य पानी का छिड़काव करना न भूलें। लगभग 3 माह में कम्पोस्ट बन जाएगी। वर्मीकम्पोस्ट को इकट्ठा करने से पहले पानी छिड़कना बंद कर दें एवं ऊपरी सतह को सूखने दें। उसे ऊपर से इकट्ठा कर छान लें तथा खेतों गमलों आदि जहां चाहें प्रयोग में लाएं अन्यथा उसे पोलीथीन के बैग में भर कर सील कर दें व संग्रह कर ले और समय पड़ने पर उपयोग करें।

## oeh&dEikLV d ykHk o mi;kx

1. अन्य रसायनिक व जैविक खादों की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट अत्यन्त सस्ता, सरल, कम समय में तैयार (3 माह में), पर्यावरण सुरक्षित, पेड़ पौधे की बढ़त तथा पैदावार को बढ़ाने में तथा भूमि को उपजाऊ बनाने में अग्रणी है।
2. इसमें भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवाणु, सूक्ष्म तत्व, खनिज (कैल्सियम, पोटेशियम, नाइट्रोजन, विटामिन, एन्जाइम तथा बैक्टीरिया) आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जो पेड़–पौधों के लिए आवश्यक होते हैं और पर्यावरण को संतुलित रखते हैं।
3. इसमें कार्बनिक पदार्थ अत्याधिक मात्रा में पाया जाता है जो मृदा, जल व सूक्ष्म जीवों को उचित वातावरण प्रदान करता है व सरंक्षण देता है।
4. यह अनेक प्रकार के कूड़े–करकट, व्यर्थ पड़े पदार्थो, घास–फूंस के अवशेष को खाकर उन्हें उपयोगी वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित करता है
5. इसके निंरतर प्रयोग से धीरे–धीरे रसायनिक खाद से छुटकारा मिल जाएगा तथा भूमि की उर्वरा शक्ति फिर से लौट आएगी ।
6. इसके प्रयोग से पेड़–पौधे, स्वस्थ व अधिक पैदावार देते हैं तथा इसके अलावा उनमें कीट व रोग से लड़ने की प्रतिरोध शक्ति धीरे–धीरे आने लगती है।
7. अब यह एक प्रकार का सरल, सस्ता व लाभदायी व्यवसाय बनता जा रहा है जिससे हमारे गांवों के नौजवान व बच्चों को जीवकोपार्जन का मौका मिलता है।
8. यह संग्रह करने पर काफी समय तक प्रभावकारी रहता है। यह रसायनिक खाद की तरह नष्ट नहीं होता है।

मुकेश कुमार जाटव[1], अनिरूद्ध चौधरी[2], मदन लाल रैगर[2] एवं सवाई दान रतनू[2]
*[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*
*[2]स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

# 'k"d {k=h; lfCt;k e lw{e ik"kd rRok dk egRo

अन्य जीवधारियों की भांति पौधों को भी भोजन की आवश्यकता होती है। पौधों के भोजन में प्रयुक्त भोज्य पदार्थ विभिन्न प्रकार के रसायनिक तत्व होते हैं, जिन्हें पोषक तत्व कहा जाता है। पौधों की आवश्यक बढ़वार एवं जीवन चक्र पूरा करने के लिए मुख्य रुप से 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। कुछ पोषक तत्व इस प्रकार के होते हैं जिनकी पौधों को बहुत ही कम मात्रा में आवश्यकता होती है तकनीकी भाषा में सूक्ष्म पोषक तत्व कहा जाता है। जिंक, लोहा, बोरोन, मैगनीज, मोलिब्डेनम और क्लोरीन को पौधे बहुत ही कम मात्रा में ग्रहण करते हैं, इसलिए इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्वों के रुप में जाना जाता है।

शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों का अच्छा उत्पादन लेने के लिए मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा होना अति आवश्यक है। यदि मृदा एवं पौधों में सूक्ष्म तत्वों का समुचित प्रबंधन कर लिया जाये तो न केवल उत्पादन में वृद्धि होगी बल्कि सब्जियों की गुणवत्ता में भी बढोतरी होगी।

**rkfydk % lw{e ik"kd rRok dk enk e Økfrd Lrj ¼fe-xk @fd-xke½**

| lw{e ik"kd rRo | Økfrd Lrj |
|---|---|
| जस्ता | 0.6 |
| लोहा | 2.5–4.5 |
| मैगनीज | 3.0 |
| तांबा | 0.2 |
| बोरोन | 0.5 |
| मोलिब्डेनम | 0.2 |

## lw{e ik"kd rRok dh deh d y{k.k

**1- ftd%** जिंक की कमी के पत्तियों में शिराओं के मध्य में पीली धारिया नजर आती है। नई पत्तियाँ विकृत, मोटी, हल्की, हरी, भंगूर आकार में बहुत ही छोटी हो जाती है जो लिटिल लीफ के नाम से जानी जाती है। टमाटर में इसकी कमी से इन्टरनोड छोटी हो जाती हैं। पत्तियों के किनारे पर जले जैसे धब्बे बन जाते हैं। फल सूखने लग जातें है एवं फल नहीं बनते है। गााजर, मूली में जिंक की कमी में पत्तिया पीली पड़ जाती है एवं उन पर धब्बे बन जाते हैं ।

**2- rkck%** इसकी कमी से लीफ क्लींग हो जाती है और झाइबेक बीमारी आ जाती है। गाजर में जड़ों की बढ़वार कम हो जाती है।

**3- ykgk%** इसकी कमी से पत्तियों के ऊपरी नई पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा अत्यधिक कमी होने पर कागज की तरह सफेद हो जाती है। इससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पूर्णतय रुक जाती है। टमाटर, फूलगोमी, पालक एवं बींस सबसे अधिक सहनशील होती है।

**4- ckjku%** फूलगोमी, टमाटर, मूली, गाजर, आदि सब्जियों को बोरोन की अत्यधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। इसकी कमी से विभिन्न सब्जी फसलों में "हर्टराट" "ब्राउनिग" या खोखला तना नामक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जड़वाली सब्जियों में "ब्राउनहार्ट" नामक बीमारी हो जाती है जिसमें जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। मूली में जल शोषित धब्बे, टमाटर में फलों का फटना तथा मटर में बौनापन तथा मोटापा झाड़िनूमा आकार का हो जाता है।

**5- exuht%** इसकी कमी से नई पत्तियों की शिराओं के मध्य में हरिमाहिनता आ जाती है। इन फसलों में मैगनीज तत्व की कमी के कारण मार्श धब्बे बन जाते हैं। किसी में नई पत्तियों में क्लोरोसीस हो जाता हैं। खीरा, जड़वाली सब्जिया, टमाटर, आदि इसकी कमी से ज्यादा प्रभावित होती हैं।

**rkfydk% enk e Mkyu ,o ifÙk;k ij fNMdko d fy, l{e rRok d mojdk@;kfxdk dh ek=k;**

| ik"kd rRo | Jkr | Ekk=k ¼fdxk@gD½ | i.kh; fNMdko dh lknrk ifr'kr |
|---|---|---|---|
| जिंक | जिंक सल्फेट (36 प्रतिशत जिंक) | 5–10 | 0.3–0.5 प्रतिशत |
| आयरन | आयरन सल्फेट (20 प्रतिशत आयरन) | 10–15 | 0.25–0.30 प्रतिशत |
| मैगनीज | मैगनीज सल्फेट (28 प्रतिशत मैगनीज) | 5–10 | 0.2–0.3 प्रतिशत |
| कॉपर | कॉपर सल्फेट (25 प्रतिशत कॉपर ) | 5–10 | 0.2–0.3 प्रतिशत |
| बोरोन | बेरेक्स (11 प्रतिशत बोरोन) | 2–5 | ––– |
| | बोरिक एसिड | ––– | 0.1–0.2 प्रतिशत |
| मोलिब्डेनम | सोडियम मोलिब्डेट (38 प्रतिशत मोलिब्डेनम ) | 2–5 | ––– |
| | अमोनियम मोलिब्डेट | ––– | 0.01–0.03 प्रतिशत |

6- **ekfyCMue%** इसकी कमी से पुरानी पत्तियों की शिराओं के मध्य में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है बाद में पत्तियों के किनारे सूखने लगते हैं और पत्तियां अन्दर की और मुड़कर कटोरी के आकार की हो जाती हैं जिससे केवल मध्य शिरा और पत्रदल के कुछ छोटे–छोटे टुकडे ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार पत्तिया पूंछ के समान दिखायी देने लगती है जिसे "व्हिपटेल " कहते हैं। टमाटर की निचली पत्तियों के किनारे मुड़ जाते है तथा बाद में "माल्टिंग" व "नेक्रोसिस" रचनाएं बन जाती हैं।

शुष्क क्षेत्रों की जलवायु में अधिकांश रुप से जिंक, लोहा एवं तांबा की कमी पायी जाती है। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्तर कम होने से उगाई जाने वाली सब्जियों में इन पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः इनका निदान अगर सही समय पर नहीं किया जाता है तो फसल उपर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। साथ ही इनका प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाए तो ये पौधो पर विषाक्त प्रभाव डालते है। अतः सही एवं उचित मात्रा में प्रयोग करके फसल की उपज में वृद्धि की जा सकती है तथा फसलों को इन तत्वों की कमी से होने वाले रोगों के बचाया जा सकता है।

आर.सी. सावल[1], कु. रेखा रेगर[2], दयानंद[3] एवं एन.के.चुंडावत[4]
*[1]वरिष्ठ अनुंसंधान अध्येयता, केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, [2]स्नातकोतर छात्रा, मृदा एवं कृषि रसायन विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर, [3]सहायक प्राध्यापक, कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर (राजस्थान), [4]वरिष्ठ अनुंसंधान अध्येयता, कृषि अनुंसंधान केन्द्र, बीकानेर*

***है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी–भरी ।***
***हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी ।।***
– मैथिलीशरण गुप्त

# i'kklfud Hkk"kk dk ljyhdj.k

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, उपक्रमों, बैंकों आदि प्रशासनिक कामकाज में राजभाषा हिंदी के स्वरुप तथा शब्दावली के कठिन और क्लिष्ट होने की बातें प्रायः सुनने को मिलती हैं। इसे सरल बनाने की चर्चा सरकार के शीर्ष स्तर के साथ–साथ हिंदी भाषा एवं साहित्य से जुड़े विभिन्न मंचों पर होती रही है। इस को ध्यान में रखकर राजभाषा विभाग के पूर्व सचिव, श्री अरूण कुमार जैन की पहल और दिशानिर्देशों के अनुसार प्रशासनिक हिंदी के सरलीकरण की योजना बनाई गई। अब यह कार्य विभाग के वर्तमान सचिव, सुश्री नीता चौधरी के मार्गदर्शन में चल रहा है।

सचिव, राजभाषा विभाग की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई है। समिति के उद्देश्य को पूरा करने तथा इसके कामकाज पर निकट से नज़र रखने के लिए राजभाषा विभाग के संयुक्त सचिव को इसका सदस्य बनाया गया है। राजभाषा विभाग की वर्तमान संयुक्त सचिव, श्रीमती पूनम जुनेजा के परामर्श और विमर्श का लााभ समिति को मिल रहा है। विधि और न्याय मंत्रालय के पूर्व अपर सचिव, श्री ब्रज किशोर शर्मा तथा जवाहरलाल नहेरु विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा एवं अनुवाद विभाग के पूर्व अध्यक्ष और केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पूर्व निदेशक प्रोफेसर गंगा प्रसाद विमल तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व रीडर एवं भाषा विज्ञानी डॉ. विमलेश कांति वर्मा समिति में गैर सरकारी सदस्य के रुप में नामित है।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग के प्रो. केसरी लाल वर्मा और केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के निदेशक प्रो. अवधेश कुमार मिश्र इस समिति के मानद सदस्य हैं। केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान के संयोजन का कार्यभार केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को सौंपा गया है और मुझे को इसका संयोजक बनाया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद 351 में कहा गया है कि संघ सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के समस्त तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। इसमें शब्दावली के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः आठवीं अनूसूची में उल्लिखित भारतीय भाषाओं से शब्द लेने की बात की गई है। इस अनुच्छ़ेद में यह भी किया गया है कि हिंदी के विकास के लिए हिंदी में हिदुस्तानी और आठवीं अनूसूची में दी गई भारत की अन्य भाषाओं के रुप, शैली व पदों को अपनाया जाए।

यहां यह उल्लेख करना प्रासांगिक होगा कि भाषा की सरलता, सहजता और सुबोधता व उसकी संप्रेषणीयता हमारे नीति–निर्माताओं का प्रमुख सरोकार रही है। 1955 में भारत सरकार द्वारा गठित राजभाषा आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा, "पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में स्पष्टता, अर्थ की शुद्धता,सरलता होनी चाहिए। पाण्डित्यपूर्ण भाषा का त्याग एवं अधिकाधिक देश में और लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए"।

इस संदर्भ में राजभाषा विभाग के दिनांक 17 मार्च, 1976, 27 अप्रैल, 1988, 30 जून, 1999 और 19 जुलाई, 2010 के कार्यालय ज्ञापन भी उल्लेखनीय हैं, जिनमें प्रशासनिक कामकाज की भाषा सरल और सुबोध रखने तथा अनुवाद की भाषा–शैली सरल, सहज, पठनीय और बोधगम्य बनाने पर जोर दिया गया है। इन ज्ञापनों में छ़ोटे–छ़ोटे वाक्यों को लिखने और हिंदी की शैली को अपनाने पर जोर दिया गया।

केंद्रीय हिंदी समिति के मंच पर स्वयं माननीय प्रधानमंत्री हिंदी की सरलता एवं सहजता के मुद्दे को उठा चुके हैं। कहना न होगा कि शब्दावली निर्माण का कार्य वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग का है और इस कार्य को करने के लिए अपेक्षित विशेषज्ञता और विद्वानों की टीम उसी के पास है। परंतु व्यवहार में शब्दावली के प्रयोग की जिम्मेदारी केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को दी गई है। वर्ष 1987 में केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा प्रकाशित 'समन्वित शब्दावली' की भूमिका में तत्कालीन सचिव ने यह स्पष्ट

किया है कि "इस शब्दावली के प्रकाशन का उद्देश्य शब्दावली की विसंगतियों को दूर करना तथा उसमें एकरूपता लाना है।" उसके प्रकाशन के 25 वर्षो बाद ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में असीम बढ़ोतरी हुई है। नए–नए विषय, नई–नई संकल्पनाएं हमारे सामने हैं। इसलिए पूर्व प्रकाशित शब्दावली को अद्यतन करने और उसे वर्तमान संदर्भो के अनुरूप बनाना समय की आवश्यकता है।

प्रशासनिक कामकाज की भाषा से जुड़ा एक उल्लेख्यनीय पहलु है कि यह मुख्यतः अनुवाद की भाषा है। इस भाषा के उपर अंग्रेजी की संरचना और व्याकरण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। विभिन्न संयोजकों का प्रयोग कर अंग्रेजी में लंबे वाक्य लिखने की परंपरा है। प्रशासनिक अंग्रेजी कर्म प्रधान भाषा है, उसमें पैसिव वॉइस का इस्तेमाल अत्यधिक होता है। परंतु हिंदी कर्ता प्रधान भाषा है अनुवादक शब्दों का तो हिंदी में अनुवाद करता है, परंतु अंग्रेजी की संरचना को ही जस का तस रहने देता है। इसी को दृष्टिगत रख 19 जुलाई, 2010 के कार्यालय ज्ञापन में छोटे–छोटे वाक्य बनाने पर जोर दिया गया। अंग्रेजी में उपवाक्यों की रचना में 'जो' और 'कि' जैसे संयोजकों की बहुतायत मिलती है, जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

इसलिए अनुवाद को सरल, सहज, और सुबोध होने के लिए केवल शब्दावली महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु संरचना का मौलिक, स्वाभाविक और सहज होना भी उतना ही आवश्यक है।

हम जानते है कि देश के हिंदी प्रदेशों में ज्यादातर काम हिंदी में होता है। परंतु शब्दावली और संरचना को लेकर वहां की भाषा भी दो शमुक्त नहीं है। केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को राज्य सरकारों से समय–समय पर प्राप्त दस्तावेजों में शब्दावली और संरचना का अटपटापन, कठिन और उलझावपूर्ण भाषा और प्रशासनिक शब्दावली में एकरूपता का अभाव स्पष्ट रुप से परिलक्षित होता है। इन राज्यों में सार्वजनिक स्थलों, पर्यटक स्थलों, रेलवे और हवाईअड्डों आदि पर लिखे नारों, सूत्र वाक्यों, जानकारी आदि की भाषा कृत्रिम और कठिन होती है। इससे राज्य सरकारों की उपलब्धियों, नीतियों, उद्देश्यों और योजनाओं की पहुंच जनता तक नहीं हो पाती है और समग्र विकास का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाता है।

इन्हीं लक्ष्यों और उद्देश्यों को ध्यान में रखकर पहले प्रयास में प्रशासन से जुडे पांच हजार शब्दों के सरलीकरण और उनके वाक्य इत्यादि प्रस्तुत करने का निर्णय लिया गया है। इस सरलीकरण के कार्य में कुछ मार्गदर्शी नियम सुनिश्चित किए गए, जिनके आधार पर हम प्रशासनिक हिंदी के सरलीकरण के काम को आगे बढ़ा रहे हैं।

---

श्रीनारायण सिंह, निदेशक
*केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो*

**vk'kk ,d ,slk iFk gS tks thouHkj vkidks xfr'khy cuk;s j[krk gSA jktHkk"kk dks blh iFk ij cuk;s j[kuk gekjk /;s; gSA**

# Hkk"kk cgrk uhj& jktHkk"kk fgUnh ds lnHkZ esa

आदि काल से अभिव्यक्ति के अनेक रूप दिखाई देते रहे हैं। आंखों के रंग, चहरे के हावभाव तथा हाथों के इशारे आदि मानव की अभिव्यक्ति को पहले भाषा संकेत रहे हैं, जिसे मूक भाषा कहा गया। यह मूक भाषा भूख, प्यास, भय, हर्ष और रूदन जैसे प्राकृतिक भावों को अभिव्यक्त करती थी। इसके बाद मिट्टी पर अंगुलियों से बनाये गए चित्र और पत्थरों पर उकेरे गए संकेत भी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सांकेतिक भाषा को अभिव्यक्त करते रहे। शनैः शनैः मानव ने आवश्यकतानुसार स्वरों और व्यंजनों को अभिव्यक्त कर बोलना सीखा तो उसकी अभिव्यक्त ने अक्षरों, संयुक्त अक्षरों और शब्दों का रूप धारण किया। इस प्रकार किसी एक मानव समूह के बीच जो मुख्याभिव्यक्ति होने लगी उसे समुह विशेष की बोली के रूप में पहचान मिली। सैंकडों वर्षो में अनेक पीढियों के बीच प्रयोग की जाने वाली बोलियों ने जब अपनी लिपियों का आविष्कार कर लिया और लिपियों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को सुरक्षित रखना शुरू किया तो, वे बोलियां भाषाओं के रूप में विकसित होने लगीं। पत्थर की शिलाओं, पेड़ों के पत्तों (भोज पत्र) और फिर कपड़े और कागज पर लिखित दस्तावेज भाषाओं के अस्तित्व और पहचान के साक्ष्य बने। बाल मनोविज्ञान के इस तथ्य को भी स्वीकारना होगा की मां के गर्भ से पैदा होने वाला बच्चा जब पहला किलकारी मारता है तो उसके अन्तर्मन में सुषुप्त भाषाप्रवाह का पहला शब्द प्रगट होता है जिसकी अभिव्यक्ति केवल मां को सम्प्रेषित होती है। फिर अबोधपन में जब–जब वह रोता है तो उसका रोना अपनी भूख को अभिव्यक्त करता है। फिर मां की नजरों से नजरे मिलाकर वह हंसना, मुस्कुराना और खेलना सीखने लगता है। इसलिए कहा है कि मां बच्चे की प्रथम गुरू होती है और मां की बोली भाषा से ही बच्चे के संस्कार बनते चले जाते है।

साहित्य मनीषियों में भाषा को बहता नीर कहा है, और भाषा विज्ञानियों की दृष्टि में वही भाषा जीवित रह सकती है जिसमें अन्य भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता हो। जिस प्रकार अपने उद्गम स्थल गंगोत्री से चलकर गंगा कन्याकुमारी तक अपने विलय स्थल तक की लंबी यात्रा तय कर अंत में सागर में विलय होकर सागर ही हो जाती है, ठीक उसी तरह किसी भी भाषा की यात्रा होती है। भाषा एक व्यक्ति के अंतस से निकल दूसरे व्यक्ति के अंतस तक पहुंचती है और फिर पूरे समाज, राष्ट्र और विश्व के जनमानस में पैठ जाती है। यही भाषा की अभिव्यक्ति है। इसलिए भाषा को अभिव्यक्ति का सषक्त माध्यम कहा जाता है।

आज संसार भर में लगभग 5000 भाषाएं और बोलियां बोली जाती हैं। उनमें से लगभग 1652 भाषाएं और बोलियां भारत में सूचीबद्ध की गई हैं। भारत के विभिन्न प्रदेषों में जनसामान्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषाएं प्रादेषिक भाषाएं हैं क्योंकि इनका प्रयोग बोलने और लिखने में होते है। लिखित प्रयोग में जहां विचारों का आदान प्रदान होता है वहीं साहित्य सृजन में भी इन प्रादेषिक भाषओं का महत्वपूर्ण योगदान है। उदाहरण के तौर पर पंजाब की पंजाबी, गुजरात की गुजराती, महाराष्ट्र की मराठी और राजस्थान की राजस्थानी के साथ–साथ अवधी, गढवाली, कुमाउनी तथा बृज भाषाएं भी अपने–अपने क्षेत्र में समृद्ध साहित्य की अधिकारिणी रही हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न गांवों, कस्बों और अंचलों में असंख्य बोलियां अभिव्यक्ति का माध्यम बनती हैं। भाषा शास्त्र में विश्व स्तर पर किए विभाजन के आलोक में भारतीय भाषाओं को मुख्य रूप से दो समुहों में बांटा गया है –आर्य भाषा परिवार की भाषाएं और द्रविड भाषाएं। द्रविड भाषाओं ओर बोलियों का अस्तित्व भारत में आर्यो के आगमन से पूर्व का रहा है। इनमें दक्षिण प्रांन्तों की भाषाएं तथा तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम जैसी प्रमुख भाषाएं हैं। आर्य भाषा परिवार की उत्पत्ति प्राचिन काल की संस्कृत भाषा को माना जाता है। भारत के प्रथम लिखित दस्तावेज वेद कहलाते हैं और इन वेदों की रचना संस्कृत में हुई। संस्कृत यानी परिमार्जित अथवा शुद्ध भाषा जिस में अन्य किसी भाषा–बोली की मिलावट नहीं

है। यह अपने आप में एक मौलिक भाषा है। संस्कृत का अर्थ संस्कारवान होना भी है, सभ्य होना भी है, विशिष्ट होना भी है। इसलिए इसे देव भाषा कहा जाता है। चूंकि संस्कृत व्याकरण के कठोर नियमों में आबद्ध थी और उच्चारण की कठिन विशिष्ट शैली के कारण यह केवल अभिजात्य या विशिष्ट अथवा शिक्षित वर्ग की भाषा बनकर रह गई थी। संस्कृत का एक सामान्य रूप भी प्रचलन में आने लगा था जिससे तत्कालीन कई लोक बोलियों का समावेष हो गया था। परिणामस्वरूप प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। कुल 07 अपभ्रंश भाषाओं से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास माना जाता है। जिसमें से शौरसेनी से पश्चिमी हिंदी का विकास हुआ जिसे खड़ी बोली भी कहा जाता रहा। अन्य अनेक भारतीय भाषाओं – बोलियों के योग से बने हिंदी के स्वरूप को खिचड़ी भाषा भी कहा गया। इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा हुई। मध्य काल में कबीर–सूर–तुलसी–मीरा– गुरूनानक और स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक संतों–महात्माओं और समाज सुधारकों ने जहां समूचे भारत के जनमानस में अपनें विचारों को पहुंचाने का माध्यम हिंदी को बनाया वहीं मुगलकाल के शासकों ने हिंदी–फारसी के मिले जुले रूप हिंदवी को अपने दरबार का प्रश्रय भी खूब दिया। मध्यकाल के साहित्य साधकों ने भी श्रृंगार रस से हिंदी को खूब सजाया–संवारा। अमीर खुसरों और जायसी जैसे सूफी संतो ने भी आध्यात्मिक विरह और मिलन की भाषा के रूप में हिंदी का खुलकर प्रयोग किया ।

अंग्रेजी दासता काल में एक और हिंदी अपना साहित्य समृद्ध करती रही वहीं शैक्षिक स्तर पर वह पिछड़ती रही क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से फूट डालो और राज करो जैसी अंग्रेजी शासन की कलुषित फलीभूत होने लगी थी। भारतीय जन मानस जहां स्वदेश की आजादी के लिए उद्वेलित हो रहा था वहीं उनकी विचार अभिव्यक्ति का माध्यम भी स्वदेशी भाषा की आवश्यकता महसूस करने लगा था। चूंकि अनेकानेक भाषाओं, बोलियों में से हिंदी को बोलने और समझने का विशाल समुदाय उपलब्ध था, अतः राजनैतिक स्तर पर भी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के यत्न प्रारंभ हुए । समाज सुधारकों, लेखकों, कवियों, साहित्यकारों और राजनैतिक चिंतकों–विचारकों ने अपने विचारों और संदेशों के बहूल आदान–प्रदान के लिए हिंदी माध्यम को सर्वश्रेष्ठ पाया। मराठी भाषी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से कहा कि हिंदी ही देश को एक सुत्र में बांध सकती है। स्वामी दयानंद सरस्वती, केशव चन्द्रसेन, सुभाष चन्द्र बोस, आचार्य कृपलानी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे अनेक अहिंदी भाषी नेताओं ने हिंदी को भारत की राजभाषा बनाने की पैरवी की। ऐसे में नवयुवकों को हिंदी सीखने की अपील की गई और नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई। परिणामस्वरूप लाखों अहिंदी भाषियों ने न केवल हिंदी को सीखा बल्कि अपने जीवन में आत्मसात किया। सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा..... ...जैसी औजपूर्ण हिंदी रचनाओं ने स्वतंत्रता सेनानियों के मनोबल को बढ़ाया। निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, कहकर भारतेन्दु हरिशन्द्र जैसे हिंदी काव्य शिल्पियों ने हिंदी को ही भारत के विकास का एकमात्र साधन कहा। इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन में जनभाषा और राष्ट्रभाषा के सशक्त रूप में उभरती चली गई तथा भीतर ही भीतर हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाने के ताने–बाने बुने जाते रहे ।

आजादी के बाद संविधान निर्मात्री सभा ने तीन दिनों तक लगातार बहस और विचार–विमर्श के पश्चात अंततः 14 सितम्बर 1949 को हिंदी को भारत की राजभाषा के पद पर सुषोभित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार 26 जनवरी 1950 से लागू हमारे संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने में हिंदी के पक्षधर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन और गोविंद वल्लभ पंत जैसे नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार भारत संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनगरी तथा अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को स्वीकार किया गया है।

हिंदी के राजभाषा स्वरूप की यात्रा को यहां से प्रारंभ हो गई किन्तु अब तक के समय काल तक पहुचने में हिंदी को बहुत समय लगा और यदि कहें कि यह सुदीर्घ विकास यात्रा अब भी जारी है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। 1950 में संसद में पारित राजभाषा के संकल्प के परिणामस्वरूप हिंदी के विकास और प्रचार–प्रसार के लिए एक 15 वर्षीय

योजना बनी। राजकाज में प्रयोगार्थ हिंदी शब्दावली के निर्माण के लिए 1950 में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली बोर्ड बनाया गया और हिंदी न जानने वाले कर्मचाारियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण की योजना लागू की गई। 1956 में राजभाषा आयोग गठित हुआ जिसने हिंदी का क्रमिक प्रयोग बढाने की सिफारिश की। उधर हिंदी के विरोध में उठ खड़े हुए तमिलनाडु आन्दोलन के परिणामस्वरूप संसदीय समिति की सिफारिषों पर अंग्रेजी को अनंतकाल तक हिंदी की सहभाषा के रूप में राजनैतिक संरक्षण भी देना पड़ा ।

तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नहेरू ने तब कहा कि अंग्रेजी को वैकल्पिक भाषा के रूप में तब तक रखना चाहूंगा जब तक लोग चाहेंगे और इस संबंध में निर्णय करने का अधिकार मैं हिंदीतर भाषियों को देना चाहूंगा, हिंदी भाषिओं को नहीं। 1963 में इस आशय के संसद में रखे गए राजभाषा विधेयक के अनुसार 1965 राजभाषा अधिनियम लागू किया गया। इस राजभाषा अधिनियम में की गई व्यवस्थाओं को प्रभावी ढ्ग से लागू करने के लिए सरकार में राजभाषा अधिनियम की धारा 3(4) के अनुसार 1976 में राजभाषा नियम बनाए। इसी नियमावली के अन्तर्गत भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन कार्यरत राजभाषा विभाग द्वारा राजभाषा निति जारी की गई। इस राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के उद्देश्य से राजभाषा विभाग प्रतिवर्ष एक वार्षिक कार्यक्रम जारी करता है। इस कार्यक्रम के तहत देश को तीन भागों में बांटा गया है –क, ख, एवं ग। क क्षेत्र हिंदी भाषी प्रदेशों का समूह है जहां देश का सबसे अधिक हिंदी भाषी वर्ग है। ख क्षेत्र में वे राज्य या प्रदेश आते हैं जहां यह माना जाता है कि वे अर्ध रूप से हिंदी भाषी हैं। ग क्षेत्र में अहिंदी भाषी प्रदेश आते हैं जहां द्रविड. मूल की भाषाएं जनभाषा के रूप में प्रचलित हैं।

राजभाषा विभाग के अधीन हिंदी शिक्षण योजना चलाई जा रही है जिसमें हिंदी भाषा, हिंदी टंकन और हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण उन कर्मचारियों को दिया जाता है जो पहले से नहीं जानते। हिंदी अनुवाद ब्यूरो भी हिंदी के असंवैधिक कार्यो के हिंदी अनुवाद के लिए एवं हिंदी अधिकारियों –निदेशकों एवं अनुवादकों को हिंदी अनुवाद के प्रशिक्षण के लिए प्राधिकृत संस्था है ।

केंन्द्र सरकार द्वारा हिंदी का विकास प्रेरणा, प्रोत्साहन और पुरस्कार के बल पर किया जाना संकल्पित है। इसलिए जहां प्रत्येक कार्यालय, संगठन, संस्थान, विभाग और मंत्रालय को हिंदी का विकास तथा प्रचार–प्रसार करने के लिए कुछ पुरस्कार प्रदान करने के अधिकार प्रदान किए गए हैं वहीं राजभाषा विभाग द्वारा भी अखिल भारतीय स्तर पर पुरस्कार योजनाएं लागू की गयी।

---

ओम मल्होत्रा 'कुसुमाकर' सहायक निदेशक (राजभाषा)
*आकाशवाणी, बीकानेर (राजस्थान)*

## jk"VHkk"kk dh 0;Fkk & ¼lt; tk'kh *lt x*½

राष्ट्र भाषा की व्यथा, दुःख भरी इसकी गाथा,
क्षेत्रीयता से ग्रस्त है, राजनीति से त्रस्त है।
हिन्दी का होता अपमान, घटता है भारत का मान,
हिन्दी दिवस पर्व है, इस पर हमें गर्व है।
सम्मानित हो राष्ट्रभाषा, सबकी यही अभिलाषा,
सदा मने हिन्दी दिवस, शपथ लें मनें पूरे बरस।
स्वार्थ को छोड़ना होगा, हिन्दी से नाता जोड़ना होगा,
हिन्दी का करे कोई अपमान, कड़ी सजा का हो प्रावधान।
हम सब की यह पुकार, सजग हो हिन्दी के लिए सरकार।

(प्रस्तुतिकरण–श्रीमती एन.जी. सोलंकी)

## b l ekVh dk vfHkuunu g

जिस माटी में हों फूल खिले,
उस माटी का अभिनंदन है ।
उस माटी से ही अन्न–धन है,
वह माटी ही तो चन्दन है ।
इस माटी का अभिनंदन है.......इस माटी का अभिनंदन है।

यह धरती वीर सपूतों की
लहू की लाली से सिंचित है
श्रमजीवी है ये कृषक–धरा
अनथक परिश्रम से प्रेरित है ।
जो माटी जीवन–रस देती
उस माटी का ही वंदन है
इस माटी का अभिनंदन है .........इस माटी का अभिनंदन है।

वसुधैव कुटुम्ब का भाव पले
हर कौम कौम के मिले गले
इस मिलवर्तन की धरती पर
हैं भांति–भांति के फूल खिले।
हर मानव देव सरिखा हो
यह सीख यहीं का पूजन है
इस माटी का अभिनंदन है.......इस माटी का अभिनंदन है।

दुश्मन सिर काट ले जाए तो
ना समझो चुप रहेने वाले
हम सहते हैं इक हद तक ही
फिर गिनते हैं मरने वाले।
धीरज धर्म मित्रता ही
संस्कारपगा यह सृजन है
इस माटी का अभिनंदन है .........इस माटी का अभिनंदन है।

यहां शब्द–शब्द में है कविता
आखर– आखर में मिले कथा
चाहे कितने ही घाव मिलें
बस एक प्रीत से मिटे व्यथा।
इस समरसता के सागर में
हिंदी का ही तो अर्चन है
इस माटी का अभिनंदन है.......इस माटी का अभिनंदन है।

**vke eYgk«kk *dlekdj***

## tkeu

कमजोरी को मेटवे, सूखा जामुन चुर्ण ।
मिश्र पीस संग मेलकर, दुग्ध संग परिपूर्ण ।।
पाँच पात जामुन लिओ, पाँच काली मिर्च ।
गुलदाउदी पुष्प तीन, संगह सायं हि खर्च ।।
मोति जरा शांति मिलि, पानीजरा भी जाय ।
बेचैनी दूर करे, शीतलता जन आय ।।
आम गुठली छोटी हरड़, जामुन गुठली डाल ।
समभागी चुर्ण बना, सायं संगह जल चाल ।।
जामुन गुठली तेल ले,कर्ण बूंद दो डाल ।
कर्णहि बहना बंद हो,रोग जोग के टाल ।।
गुठली चूर्ण ग्राम दस,जल से लो दो बार ।
मूत्र गुरूत्व कमी हो,आवक रूके बार–बार ।।
बहेड़ा के छिलके लिय, गुठली जामुन साथ ।
समभागी चुर्ण बना, पाँच ग्राम जल साथ ।।
बहुमूत्र आराम मले,प्रातः सायं सेव ।
बार–बार तकलिफ नां, उर में चैन सदैव ।।
ताजी, जड़ दस ग्राम ही, या लाक ताजे पात ।
प्रातः सायं हिनीर संग,मधुमेह दो मात ।।
जामुन छाल जलसयकर, स्वेत भस्म तैयार ।
भूरी शीशी डालिये, सेवो दिवस त्रिबार ।।
खरल छने इस भस्म से, मधुमेह हो शांत ।
ग्राम एक दो भस्म लो, चीनी बल प्रशांत ।।
मधुमेह समाप्ति पर, आधा वो चौथाय ।
सुबह दोपहर सायं को, खालि उदर पिलाय ।।
कमजोरी के वास्ते, चद्र प्रभावटिचार ।
चम्मच 'पाव' गिलोयसत्व प्रंवाल चावल भार ।।
सौ ग्राम गुठली चूर्ण, सौ ग्राम लो सॉठ ।
सौ ग्राम गुड़ भेलि में, दो सौ ग्राम हि फंट ।।
धृत कुमारी गुदे संग, गोली चने समान ।
तीन बार दो वटी लो, कर प्रयोग हे मान ।।

**c`tekgu lkuh] flgiky]tk/kiqj**

# jktHkk"kk xfrfof/k;k

## jktHkk"kk dk;kZUo;u lfefr dh cSBd

वर्ष 2014–15 के दौरान संस्थान राजभाषा कार्यान्वायन समिति की तिमाही के आधार पर बैठकें आयोजित की गयी। प्रथम तिमाही की बैठक दिनांक 17 जून 2014 को द्वितीय तिमाही की बैठक का आयोजन दिनांक 23 सितम्बर, 2014 तथा तीसरी बैठक दिनांक 16 दिसम्बर 2014 को आयोजित की गयी। चौथी तिमाही की बैठक का आयोजन दिनांक 03 मार्च 2015 को किया गया था।

## fgUnh dk;Z'kkyk dk vk;kstu

वित्तीय वर्ष की प्रथम तिमाही की हिन्दीन कार्यशाला का आयोजन दिनांक 28 जून, 2014 को किया गया। द्वितीय तिमाही की कार्यशाला का आयोजन दिनांक 11 सितम्बार, 2014 को किया गया था जिसमें बीकानेर के हिन्दी् साहित्यिकार श्री रमेश कुमार शर्मा ने ''भाषायी सह–अस्तिसत्वी की प्रतीक हिन्दी में दैनिक उपयोग की अपार संभावनाएं विषय पर अपना व्याख्यान दिया। इसी क्रम में तीसरी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 24 दिसम्बार 2014 को किया गया जिसमें डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर के हिंदी प्राध्यापक डॉ. ब्रज रतन जोशी ने ''हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता एवं वर्तनी शुद्धता विषय पर व्याख्यान देकर संस्थान के वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों के हिंदी के प्रति लगाव को और अधिक प्रबल किया। चौथी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 25 मार्च 2015 को किया गया था जिसमें स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, बीकानेर के श्री दिवाकर मणी, प्रबंधक (राजभाषा) ने यूनीकॉड के द्वारा कम्पयूटर पर हिन्दी का प्रयोग विषय पर अपना व्यांख्यान दिया था।

## fgUnh psruk lIrkg vk;kstu

संस्थान में दिनांक 08 सितम्बकर से 15 सितम्बर, 2014 तक हिन्दीय चेतना सप्ताह का आयोजन किया गया। इस आयोजन का उद्घाटन समारोह दिनांक 8 सितम्बर 2014 को किया गया। उद्धघाटन समारोह के विशिष्ट अतिथि काजरी के बीकानेर स्थित प्रादेशिक अनुसंधान केंद्र के अध्यक्ष डॉ एन.डी. यादव थे। उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा कि हिन्दी हमारी राजभाषा तो है लेकिन उसके प्रयोग के लिए हमें लोगों में चेतना जागृत करने की आवश्यकता है। इस संस्थान ने हिंदी चेतना सप्ताोह का आयेजन कर एक महत्व पूर्ण कार्य किया है। इस अवसर पर संस्थान के प्रभारी निदेशक और इस कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. ब्रजेश दत्त शर्मा ने उपस्थित वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों से हिन्दी में अधिकाधिक कार्य करने का आग्रह किया। हिन्दी चेतना सप्ताह समिति के अध्यंक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक डॉ. राकेश भार्गव ने इस दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध करवायी।

चेतना मास के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इनमें दिनांक 09 सितम्बर 2014 को हिंदी टिप्पण लेखन, 10 सितम्बर को हिंदी भाषा ज्ञान और 12 सितम्बर को वैज्ञानिक शोध लेख प्रतियोगिताओं का आयेजन किया गया। इस दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजेताओं को समापन समारोह में मुख्य अतिथि बीकानेर के वयोवृद्ध हिंदी साहित्यकार और कवि श्री भवानी शंकर व्यास विनोद ने पुरस्कारों से सम्मानित किया।

इसमें हिंदी टिप्पयण लेखन प्रतियोगिता में श्री कुलदीप पान्डे, सहायक प्रथम, श्री स्वश्रूप चंद राठौड़, अ.श्रेणी लिपिक द्वितीय और श्री रावत सिंह अ.श्रेणी लिपिक ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। हिन्दी भाषा ज्ञान प्रतियोगिता में वैज्ञानिक वर्ग में डॉ. हरे कृष्ण, वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रथम, डॉ. बालूराम चौधरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक द्वितीय और तृतीय स्थान डॉ. एस. के. माहेश्वरी वरिष्ठ वैज्ञानिक ने प्राप्त किया। तकनीकी वर्ग में डॉ. उदयवीर सिंह वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी ने प्रथम और श्री भोजराज खत्री तकनीकी अधिकारी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। प्रशासकीय वर्ग में प्रथम स्थान पर श्री कुलदीप पान्डे , सहायक, द्वितीय श्री रावत सिंह अ.श्रेणी लिपिक और तृतीय श्री स्वरूप चंद राठौड़ अ.श्रेणी लिपिक रहे। इसी प्रकार वैज्ञानिक शोध लेख प्रतियोगिता में प्रथम स्थान डॉ. श्रवण एम. हलधर,

fp= % fgUnh pruk lIrkg d nkjku mifLFkr vfrfFk vkj lLFkku d iHkkjh funs'kd

fp= % pruk lIrkg d nkjku vk;kftr ifr;kfxrk vkj fotrk x.k ifrHkkxh iqjLdkj ydr g,

वैज्ञानिक ने और द्वितीय स्थान डॉ. हरे कृष्णी वरिष्ठ वैज्ञानिक ने प्राप्त किया। डॉ. बालू राम चौधरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक और डॉ. पिनाकी आचार्य, वरिष्ठ वैज्ञानिक को प्रोत्साहन पुरस्कार दिया गया।

## fgUnh çdk'ku

इस अवधि के दौरान संस्थान द्वारा निम्न लिखित हिन्दी प्रकाशन प्रकाशित किए गये।

1. वार्षिक प्रतिवेदन 2013–14 (संस्थान)
2. वार्षिक प्रतिवेदन 2013–14 (एक्रिप)
3. छः माही समाचार पत्र (वर्ष में दो अंक द्विभाषी)
4. राजभाषा पत्रिका 'मरू बागवाणी 2013'
5. पौधा, किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम एवं जागरुकता कार्यक्रम पर पुस्तिका
6. मतीरा (बुलेटिन)
7. खेजड़ी (बुलेटिन)
8. शुष्क क्षेत्रों में सब्जियों के प्रमुख कीट एवं प्रबंधन (फोल्डर)